प्रकाशक
श्रीवलदेवप्रसाद, साहित्यरत्न
शक्ति कार्यालय,
दारागंज, प्रयाग

मूल्य डेढ़ रुपया

भूमिका

राजस्थान काव्य का भी धनी था और रहेगा। केवल मीराँ ही मध्यकालीन साहित्य की अग्रिम कवयित्री है। मीराँ के पद भारतव्यापी हो गये हैं। मीराँ के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता जब लोगों में बढ़ी, तो भक्त लोगों ने मीराँ का वैभव बढ़ाना चाहा। अनेक चमत्कारी और निराधार कल्पनायें प्रसार पाने लगीं। मीराँ का जीवन-चरित लिखने-वालों को जो कुछ मिला, वह सब मुद्रित हो जाने पर सदा के लिए मीराँ से जुड़ गया। आवश्यकता इस बात की बनी रही कि मीराँ सम्बन्धी सभी कथाओं को इतिहास की कसौटी पर कसकर उसका प्रमाणिक जीवन-वृत्त लिखा जाय और साथ-साथ उसके पदों का भी संशोधन हो जाय। जब से मीराँ के पद पाठ्यक्रम में आने लगे हैं तब से उन पदों के कई संग्रह निकले हैं। इन संग्रहों में मीराँ की जीवनी भी संक्षेप में रहती है। इन सभी प्रयासों से हिन्दी का लाभ तो अवश्य हुआ है, पर यह गति विकासोन्मुख कम रही। इसका प्रमुख कारण रहा है—संपादकों में खोज-वृत्ति का कम होना और यथा उपलब्ध सामग्री को बटोरकर नये सिरे से लिख भर देना। इस कारण का मुख्य आधार था इन संग्रहों का पाठ्य-पुस्तक के रूप में जन्म लेना। कुछ भी हो हमें स्पष्ट मानना चाहिए कि अभी हिन्दी के कवियों और लेखकों की रचानाओं के सुसंपादित संस्करण निकलने बाकी हैं। इन संस्करणों के पश्चात् ही उनके संक्षिप्त संस्करण भी सर्वसाधारण के लिये निकल सकेंगे।

अभी तक के मीराँ संबंधी ग्रन्थों में स्व० मुंशी देवी प्रसादजी का 'श्रीमती मीरांबाई का जीवन-चरित (वि० सं० १९५४)', इतिहासवेत्ता

श्री जगदीशसिंहजी गहलोत का 'सती मीराँबाई का जीवन और काव्य' (श्रावण, सं० १९८८) और प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी की 'मीराँ-मन्दाकिनी' (बड़ी तीज, सं० १९८७) ही श्रेष्ठ रहे हैं। ये तीनों लेखक राजस्थानी और चिन्तनशील होने के कारण विशेष सफल रहे। मीराँ के सभी पदों को खोज पूर्ण भूमिका सहित निकालने का विचार हिन्दी संसार के कई विद्वानों को बना रहा। स्व० पुरोहित हरिनारायण जी शर्मा (जयपुर) से हमें पूर्ण आशा थी। कई घंटों तक मैंने उनसे बात-चीत भी की थी। पर गत मास उनके उठ जाने से यह कार्य अधूरा ही पड़ा दिखने लगा है। मेरा भी विचार कई वर्षों से मीराँ के विषय में एक वृहत् ग्रंथ प्रस्तुत करने का था। सम्पूर्ण सामग्री भी एकत्र हो गई। मीराँ के गुजराती पदों का विशाल संग्रह पंडित केशवराम काशीराम शास्त्री (अध्यक्ष, गुजराती विभाग, शोध विभाग, गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी, अहमदाबाद) की सहायता से हो गया। पर समय की कमी के कारण यह कार्य पूरा न बन पड़ा। प्रभु का अनुग्रह हुआ तो शीघ्र ही संपूर्ण सामग्री को व्यवस्थित रूप से हिन्दी संसार के सम्मुख रखूँगा। अभी तो एकत्र की गई सामग्री से कुछ चुन कर यह पुस्तक शीघ्रता से प्रकट कर रहा हूँ। समयाभाव के कारण कुछ ऐसी त्रुटियाँ अवश्य रह गई हैं, जिन पर मीन-मेष निकाली जा सकती है, पर अगले संस्करण में वे नहीं रहने पावेंगी, जैसे 'राणा विक्रमादित्य' का विक्रमादित्य सिंह छप जाना आदि। राजस्थान-संघ के सभापति श्री डा० मुकुन्द स्वरूप जी वर्मा (अध्यक्ष सर सुन्दर लाल चिकित्सालय व प्रोफेसर आयुर्वेदिक कालेज, का० वि० वि०) की कृपा और निरन्तर उत्साह के फल स्वरूप ही में इस पुस्तक को तीन चार दिनों में लिख पाया हूँ। उनकी तत्परता से यह पुस्तक उतनी ही शीघ्रता से प्रकाशित भी हो रही है। अतएव में सदैव के लिए डॉ० वर्मा साहब का आभारी रहूँगा।

मेरे पूज्य चाचा, राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीजगदीश-

सिंहजी गहलोत के वरद हस्त का ही यह प्रसाद है। स्नेह, ममता, आशीर्वाद का मैं पात्र हूँ; तब धन्यवाद देकर धृष्टता का भागी नहीं बनूँगा। आपके सुयोग्य पुत्र कुँवर सुखवीरसिंहजी गहलोत एम० ए० ने मीरॉं पर एक वृहत् ग्रन्थ तैयार कर लिया है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इस ग्रंथ के कुछ अंश अभी-अभी हिन्दी के पत्रों में प्रकाशित होकर ख्याति भी पा चुके हैं।

अन्त में, मैं उन सभी लेखकों का आभारी हूँ जिनके ग्रन्थों से मैंने मीराँ संबंधी सामग्री बटोरी है। पुस्तक के अन्त में १०८ पदों की माला में ४० अप्रकाशित पद देकर पुस्तक को मौलिक बनाने की चेष्टा की गई है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इस पुस्तक की प्रेस कापी मेरी छोटी बहिन सरोज कुँवर गहलोत (प्रथम वर्ष साहित्य, काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय) ने न कर दी होती तो प्रकाशन में शीघ्रता नहीं हो पाती।

जोधपुर (मारवाड़)
वसंत पंचमी
संवत् २००२ वि०।

महावीरसिंह गहलोत

विषय सूची

जीवन-वृत्त

राजस्थान ही नहीं सम्पूर्ण भारत आज मीराँ से पूर्णतया परिचित है। सभी एक स्वर से मीराँ-रचित पदों को हरिभक्ति का साधन मानकर कीर्तनों में स्थान देते हैं।

व्यक्तित्व

पर देखा जाय तो मीराँ केवल अपनी प्रेम-साधना के कारण ही प्रसिद्ध हुई है। मीराँ का राजस्थान के इतिहास की घटनाओं से कुछ भी नाता नहीं है और न वह अपने समय की राजनीति से सम्बन्धित ही रही है। इतना सब कुछ होने पर भी मीराँ कई राजपूत राजाओं से अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। राजस्थान की एक कहावत है, "नाँव तो भीतड़ा के गीतड़ा ही सूँ रेवे"; अर्थात् कीर्त्ति को स्थायी रूप से स्मारक (भवन) या गीत (यशोगान) ही रखते हैं। उक्ति बहुत संगत है। मीराँ की कीर्ति आज उसी के बनाये हुए पदों के कारण स्थिर है।

मीराँ को उसकी सास, ननद और भाभी किस रूप में देखती थीं या उसके देवर क्या समझते थे—आज इन पारिवारिक संबंधों की अटकल लगाना हमारे लिए अधिक लाभदायक नहीं

है। पर मीराँ का व्यक्तित्व हमारे सम्मुख क्या है ? इसका लेखा लेना प्रत्येक राष्ट्र का कर्त्तव्य है। मीराँ किसी एक प्रान्त की नहीं, वरन् भारत की गौरवमय विभूति है।

मीराँ 'गिरधर भजी' पूर्ण रूप से 'प्रेम दिवानी' हो गई थी। लौकिक पति को खोकर वह अवश्य दुखी हुई होगी, पर उसने एक 'अमूल्य हीरा' पा लिया। 'पूरब जन्म की प्रीति' का स्मरण कर वह स्वयं को गोपी मानकर, 'अपने जनम मरण के साथी' की बाट जोहने लगी। 'दिन नहिं भूख, रैन नहिं निंदरा' और 'तन पल पल छीजै' की दशा उसकी हो गई थी। मीराँ की दिन-चर्या थी--'ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखियाँ राती' करना। वर्ष वीते—'दरस विन दूखण लागे नैन' और 'नैन भर लावे।' तब एक दिन—'सुनी हौ मैं हरि आवन की आवाज,' मीराँ का हृदय प्रभु-मिलन की आशा से उमग उठा और मिलन वेला भी आई। मीराँ गा उठी—'सहेलियाँ साजन घर आया हो', 'जोसीड़ा ने लाख बधाई रे, अब घर आये स्याम।' 'मीराँ लागो रङ्ग हरी।' इस हेतु—'अब काहे की लाज', 'मीराँ प्रकट तें नाची।' मीराँ सफल हुई, यह रहस्य वही सुनाती है —'मैं अपणे सैयाँ सँग साँची।' अपने सजन को पाकर, वह संसार छोड़ने समय अपनी अंतिम वाणी में यह कह गई—

सजन सुधि ज्यों जानें त्यों लीजैं।
तुम बिन मोरे और न कोई कृपा रावरी कीजैं।
द्योस न भूख रैन नहिं निद्रा यह तन पल पल छीजैं।
मीराँ प्रभु गिरधर नागर अब मिलि बिछुरनि नहिं कीजैं।

नाभादास, ध्रुवदास, प्रियादास, व्यास, महाराजा रघुराजसिंह, हरिदास, दयाराम, दयाबाई, मलूकदास, राधाबाई आदि प्रमुख हैं। मीराँ का काव्य इतना सरस बन पड़ा है कि राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब के साहित्यकार मीराँ को अपनी ही कवयित्री मानते हैं। मीराँ इन प्रान्तों की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत की निधि है।

मीराँ को ठीक रूप से समझना हो तो नाभादास के कथन पर पूर्ण विश्वास कीजिये। नाभादास ने अपनी भक्तमाल में भक्तों और भक्त-कवियों का परिचय बहुत ही सूक्ष्म रीति से दिया है। नाभादास गायक भक्त को कभी कवि नहीं कहते और यदि कवि मानते हैं तो उसके काव्य की विशेषता भी प्रकट करते हैं। नाभादास हिन्दी साहित्य के कवियों के प्रथम आलोचक और भक्तों के सुघड़ पारखी हैं। नाभादास की चमत्कार-वर्णन की प्रवृत्ति नहीं है। वे तो अपनी समदृष्टि से सभी भक्तों का गुणानुसार परिचय देते रहते हैं। मीराँ को नाभादास ने इस प्रकार समझा है—कलियुग में मीराँ ने गोपी प्रेम प्रकट किया। मीराँ निडर, निरंकुश, लोक और कुल की लाज की शृंखला को तोड़कर हरि-यश गाती थी। भक्ति की साधना उसने डंके की चोट पर की और वह किसी से डरी नहीं। दुष्टों ने साधु-सेवा, सत्संग आदि को दोष मानकर, उसे विष भी दिया, वह अमृत की भाँति उसको पी गई और उसका बाल भी बाँका न हो सका—

> सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलिजुगहिं दिखायो।
> निरअंकुस अति निडर, रसिक जस रसना गायो॥
> दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयो।
> बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो॥

भक्ति निसान बजाय के, काहू ते नाहिंन लजी।
लोक लाज कुल शृङ्खला तजि, मीराँ गिरधर भजी ॥१५॥
(भक्तमाल)

ध्रुवदास भी मीराँ के चरित और व्यक्तित्व का बखान करते हैं—

लाज छाँड़ि गिरधर भजी, करी न कछु कुल कानि।
सोई मीराँ जग विदित, प्रकट भक्ति की खानि॥
ललिता हू लै बोलिकै, तासौं हो अति हेत।
आनँद सों निरखत फिरै, वृन्दावन रसखेत॥
नृत्यत नूपुर बाँधि कै, नाचत लै करतार।
विमल हियौ भक्तिनि मिलौ, तृन सम गन्यौ संसार॥
बंधुनि विष ताकौं दियौ, करि विचार नृप आन।
सो विष फिरि अमृत भयौ, तब लागे पछितान॥

इस 'कुल गर्वी' को तजनेवाली गोपी के जीवन को देखने की किसे इच्छा न होगी?

मीरां पर कुछ भी लिखने के पूर्व, आधुनिक साहित्यिक खोजियों की शोधों ने विवश कर दिया है कि 'मीरां' नाम की निरुक्ति पर भी विचार किया जाय।

नाम

स्व० डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने 'मीरां' शब्द का अपूर्व अर्थ लगाते हुए एक विचित्र कल्पना उपस्थित की, कि मीरांबाई नाम, उपनाम है और संतों द्वारा दिया हुआ जान पड़ता है।* डॉ० बड़थ्वाल ने कबीर के नाम दोहों में आये 'मीरां' शब्द का अर्थ, परमात्मा या ईश्वर लगाया और 'बाई' का अर्थ पत्नी लगाकर, 'मीरांबाई' से

* 'सरस्वती' (प्रयाग) भाग ४०, अंक ३, पृष्ठ २११-१३।

तात्पर्य निकाला—'ईश्वर की पत्नी'। इस धारणा का समर्थन स्वयं मीराँ के पदों से भी हुआ जान पड़ेगा। कई पदों में मीराँ ने अपने आपको 'गिरधर की पत्नी' कहा भी है। डॉ० वड़थ्वाल ने 'मीराँ' का अर्थ 'ईश्वर' सिद्ध करने के लिए कई भाषाओं के कोषों का सहारा भी लिया है। उनका यह प्रयास कहाँ तक सफल हुआ इसकी परीक्षा करना यहाँ इस स्थान पर इष्ट नहीं है, पर इतना तो स्पष्ट हो जायगा कि यह उपनाम वाली खोज निराधार है। अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। केवल 'बाई' शब्द का अर्थ ही समाधान कर सकता है। राजस्थान में 'बाई' का प्रयोग 'पुत्री' के अर्थ में होता है। 'बाई' का अर्थ 'पत्नी' जब होता ही नहीं, तब किस आधार पर, मारवाड़ में पली मीराँ को वहाँ के निवासी इस 'ईश्वर की पत्नी' उपनाम से सम्बोधित करेंगे इस बात की कल्पना कैसे की जा सकती है? इस हेतु यह उपनाम वाली धारणा निर्मूल है।

उपर्युक्त समस्या का सर्वप्रथम खंडन गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित केशवराम काशीराम शास्त्री ने किया और उनके पश्चात् अन्य कई विद्वानों ने इस दिशा में प्रयास किया। मजे की बात यह रही कि सभी विद्वान् अपने पूर्ववर्ती पक्ष का खंडन करके 'मीराँ' शब्द की निरुक्ति अपने मतानुसार घोषित करते रहे। इससे कई धारणायें साहित्य-संसार में प्रसार पाने लगी हैं। उन सभी धारणाओं की हम संक्षेप में यहाँ जाँच करेंगे—

१—पं० केशवराम काशीराम शास्त्री (अपनी पुस्तक 'कवि-चरित' भाग १ में) मीराँ का मूल रूप 'मिहिर' (सूर्य) आदि शब्दों से प्रकट होने का संकेत मात्र देकर विषय को विचाराधीन छोड़ देते हैं।

२—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी (बीकानेर) मीराँ का मूल

रूप 'वीराँ' मानते हैं।† आपने प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण संबंधी नियमों (अक्षर परिवर्त्तन के विकास की परम्परा) के आधार पर अपनी यह धारणा सिद्ध करनी चाही है। पर यह प्रयास सफलता नहीं पा सका, क्योंकि व्याकरण के उलटफेर से बहुत कुछ अन्य बातों को भी सिद्ध और असिद्ध किया जा सकता है। एक अन्य विद्वान् ने स्वामीजी की इस 'वीराँ' समस्या का खंडन करते हुए अपना मत भी प्रकट किया है।* सम्भव है इस धारणा का कारण यह रहा हो कि राजस्थान में 'वीराँ' छाप के कुछ पद आज भी किसी (अज्ञात) कवयित्री के उपलब्ध होते हैं। 'महिला-मृदुवाणी' में कुछ ऐसे पद दिये भी हैं। इससे अनुमान लगाया गया होगा कि यह 'वीराँ' ही आगे जाकर 'मीरां' में बदल गया। स्व० पुरोहित हरिनारायणजी (जयपुर) ने स्वामीजी की इस धारणा को बहुत लचीली ही कहा था।

३—स्व० पुरोहित हरिनारायण जी मीराँ नाम का वास्तविक रहस्य प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयत्नशील रहे। आपने राजस्थान के कई वृद्ध मूलनिवासियों और इतिहास-वेत्ताओं से 'मीरां' नाम पर प्रश्न पूछे और तदनन्तर अपनी धारणा निश्चित की। आपकी धारणा अभी तक लेख रूप में प्रकाशित नहीं हुई है, पर वह ज्ञात हो चुकी है। आपका मत है कि मीरां के माता-पिता सन्तान के लिए आकुल रहा करते थे। उन्होंने अजमेर शरीफ के सिद्ध मीरांशाह की मनौती करके संतान के लिए कामना की और फल-स्वरूप उनके यहां पुत्री हुई। यही पुत्री मीरां कहलाई।

---

†'राजस्थानी-साहित्य' (उदयपुर) वर्ष १, अंक २

* वही, वर्ष १ अंक ३

यह धारणा भी दोष रहित नहीं है। प्रथम तो 'मीराँ' के माता पिता के घर मीराँ का जन्म उनकी युवावस्था में ही हुआ था, जिससे उनका सन्तान के लिए आकुल रहना संगत नहीं जान पड़ता है। द्वितीय यह कि अजमेर में उन दिनों ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का बोलबाला था; मीराँशाह का प्रसिद्धि काल मीराँ के जन्म के पश्चात् की बात है। अतएव इस प्रकार की धारणा कहाँ तक सत्य हो सकती है और सो भी उपर्युक्त परिस्थितियों में ? ※

'मीराँ' शब्द के अर्थ को खोजने के लिए हमें इतनी अटकलें लगाने या दूर की कौड़ी ढूँढ़ लाने की कष्ट-साधना नहीं करनी चाहिए। 'मीराँ' नाम या उपनाम है की समस्या जब हिन्दी-संसार में छिड़ गई है, तब इस उलझन को सुलझा ही लेना चाहिए। शंका और समाधान के लिए हमें दो प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ना है--(१) क्या मीराँ नाम अन्य भी किसी पूर्ववर्त्ती या समकालीन स्त्री का था और यदि था तो उस स्त्री के चरित विशेष क्या हैं ? और (२) 'मीराँ' शब्द का अर्थ व इसके रूप से मिलते-जुलते अन्य शब्दों का अर्थ क्या है ?

प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि किसी भी स्त्री का 'मीराँ' नाम इतिहास में खोजने पर नहीं मिलता है। पर हमारी चरित-नायिका मीराँबाई की समकालीन एक राजकुमारी (राव मालदेव की पाँचवीं पुत्री) का नाम अवश्य ही 'मीराँबाई' था। यह

※मीराँ हुसेन खंगसवार (मीराँ साहब) संवत् १६०१ तक अप्रसिद्ध ही रहे। उनकी कब्र साधारण रूप में थी, पर उसकी मानता संवत् १६१८ से बढ़ी जब स्वयं पातशाह अकबर वहाँ गया था। (विशेष के लिए, देखिये हरविलास शारदा कृत अजमेर। पृ० ९६)

राजकुमारी किसी भी चरित विशेष के लिए प्रसिद्ध नहीं है। इस उल्लेख से इतना तो सिद्ध हो जाता है कि यह नाम किसी व्यक्ति विशेष के गुणों के लिए ही सीमित नही था। वरन् एक साधारण व्यक्ति वाचक संज्ञा की भाँति व्यवहार में आता था।*
गुजरात में दो मीराँ नामक कवयित्रियाँ और हुई जान पड़ती हैं, इनके नाम मीरां क्यों रहे इस विषय में कभी आगे विचार करेंगे।

दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि 'मीराँ' का अर्थ ईश्वर लगाया जा सकता है, पर इसका सही अर्थ 'सागर' या 'महान्' है। कबीर-साहित्य में 'मीरां' का अर्थ 'महान्' ही उचित प्रतीत होता है। पर इतना तो स्पष्ट है कि 'मीराँ' का संबंध 'मीर' से अधिक है, जिसका अर्थ है 'उच्च': जैसे 'मीर मुंशी' आदि शब्द। मीरां का मीर ही तो राजस्थान के हम्मीर में जुड़ा हुआ इसके प्रचलन का विकास बता रहा है। राजस्थान की ठेठ उक्ति है—'मीरांसा'। यथा 'वो मिनख तो मीरांसा है', अर्थात् वह पुरुष तो 'मीरांसा' है। 'मीरांसा'—का अर्थ बहुत भावों को लिए है जो

*प्रसंगवश इतना और ठीक लेना चाहिए कि आगे चलकर 'मीरां' नाम रूढ़ि हो गया और भक्त (विशेषकर) विधवा स्त्रियों के लिए एक उपाधि स्वरूप बन गया। ठीक इसी प्रकार का एक शब्द है—'सूरदास', जो आज किसी भी अंध गायक के लिए प्रयोग में आता है। 'मीरां' शब्द अब ठेठ रूढ़ि हो गया है। मेरी एक विधवा मामी जो ईश्वर भक्त थी सो [illegible] होकर सारा परिवार उन्हें 'मीरां बेन' (गुजराती संबोधन) न कह कर '[illegible]' कहता है। इधर इन दिनों विशेषकर बंगाल में [illegible] श्रीकृष्णभक्तों के परिवार में लड़कियों का नाम 'मीरां' रखा जा रहा है। यह उनके गुणों के आधार पर नहीं वरन् नाम की मधुरता के कारण किया जाता है।

सम्भव है इन शब्दों से कुछ स्पष्ट हो जायगा—'मुक्त मन वाला, कृपालु शीलवान पुरुष।'

बहुत सम्भव तो यही जान पड़ता है कि मीराँ के माता-पिता ने अपनी प्रथम सन्तान को जीवन-चितामणि जानकर अपने सुखों में उसे अति उच्च पद दिया और उसके शील, गुण, नम्रता आदि को लखकर यथागुणानुसार उसे मीर (श्रेष्ठ) ही माना और वही हमारी मीराँबाई अपने नाम को भक्ति-क्षेत्र और काव्य-क्षेत्र में, स्वर्णांकित करने में सफल हुई। यही सीधा-सादा सरल रहस्य, 'मीराँ' नाम में निहित जान पड़ता है।

वंश

जोधपुर के संस्थापक राठौड़ राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र राव दूदाजी ने अपने अधिकृत भूभाग में संवत् १५१६ वि० में मेड़ता नामक नगर बसाया। मेड़ता नगर, जोधपुर से ३५ मील की दूरी पर उत्तर पूर्व दिशा में है।† राव दूदाजी के ज्येष्ट पुत्र वीरमसी (या वीरमदेव) संवत् १५३४ से १६०२ वि० तक जीवित रहे। इनके पुत्र का नाम जयमल था। राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र का नाम रतनसी (या रत्नसिंह) था। रतनसी (जन्म लगभग १५४० वि० और मृत्यु संवत् १५८४ वि०) को जागीर के रूप में १२ गाँव मिले थे। इन्हीं गाँवों में से एक कुड़की गाँव (चौकड़ी नाम त्रुटिपूर्ण) है; जहाँ पर मीराँबाई का जन्म हुआ था। यह वंश 'मेड़तिया' राठौड़ कहलाया।*

---

†मेड़ते से जो सीधा मार्ग जोधपुर नगर के प्राचीर तक आता है, वहाँ प्राचीर में एक बड़ा गोपुर (द्वार) है, जिसका नाम 'मेड़तिया द्वार' है।

*मीराँ मेड़ते की थी। इस हेतु परम्परानुसार वह अपनी ससुराल में अपने नाम से संबोधित न होकर, 'मेड़तणी रानी', नाम से प्रसिद्ध हुई।

इस वंश में देवी की उपासना के अतिरिक्त चतुर्भुज (चारभुजा) भगवान की पूजा भी होती थी। दूदाजी, वीरमदेवजी और विशेषकर जयमलजी, वीर होने के अतिरिक्त प्रसिद्ध वैष्णव भक्त हुए हैं। नाभादास ने इन तीनों राजाओं का उल्लेख 'भक्तमाल' में किया है।

जन्म-संवत्

मीरां के जन्म-संवत् को निर्धारित करने के लिए बहुत उग्र प्रयत्न हो चुके हैं। इस पहेली को सुलझानेवालों ने कुछ दंतकथाओं को अनबूझे ही सत्य मान लिया और उसके फलस्वरूप वे इतिहास के मापदंड से भ्रमित ही होते रहे। कर्नल टाड ने जनश्रुति के आधार पर संवत् १५०५ वि० में बने महाराणा कुंभ के शिवालय के पास वाले मंदिर को मीरांबाई का मान कर चट से लिख दिया कि मीरांबाई, महाराणा कुंभ की पत्नी थी। और अंगरेजी में लिखा हुआ पढ़कर ज्ञान प्राप्त करने वाले तथा अंगरेजी में लिखे को 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' मानने वाले सभी विद्वान् टाड साहब के इस कथन से वर्षों भ्रान्त रहे। गुजराती लेखकों में इस कथन से विशेष भ्रम फैला रहा। सरोज-कार शिवसिंह सेंगर ने भी ऐसा ही कुछ लिखा है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिख दिया कि मीरां मैथिल कवि विद्यापति की समसामयिक थी। कुछ ने लिख दिया कि मीरां राठौड़ जयमल की पुत्री थी। सारांश यह है कि इन ऐतिहासिक पात्रों से मीरां को संबंधित जानकर, लोग उसका जन्म-संवत् निर्धारित करने को जो समय समय पर त्रुटि पूर्ण सिद्ध होता गया। कुछ लोगों ने 'मीरां और तुलसी के पत्र-व्यवहार' को और 'मीरां और अकबर सहित तानसेन की भेंट' को सत्य मानकर मीरां के मृत्यु संवत् की संगति ऐतिहासिक पात्रों से

मिलने के फेर में उसे भी आगे पीछे सरकाते रहे। इन सभी प्रयत्नों का उल्लेख करके उनकी अप्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए कई पृष्ठों की आवश्यकता पड़ेगी दूसरे वे अब अपना सभी महत्व खो भी बैठे हैं। इस हेतु हम मीराँ के जीवन की तिथियाँ संक्षेप में निर्धारित करने का प्रयास करेंगे।

मीराँ का जन्म-संवत् प्रामाणिक रूप से किसी भी स्थल पर नहीं मिला है। पर अनुमान-सिद्ध संवत् १६६० वि० हम निम्नलिखित कारणों से उचित मानते हैं। मीराँ के पिता रतनसी, वीरमसी (जन्म संवत् १५३४ वि०) से छोटे थे। राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र होने के कारण उनका जन्म-संवत् लगभग १५४० वि० ही होगा। इन रतनसी के २० वर्ष की आयु में मान लीजिए मीराँ उत्पन्न हुई हो तो मीराँ का जन्म लगभग १५६० संवत् में हुआ होगा। इसकी पुष्टि इस प्रकार से भी हो जाती है कि मीराँ के पति भोजराज (भोजराई) विवाह के समय मीराँ से कुछ ही बड़े ठहरते हैं। भोजराज का जन्म-संवत् लगभग १५५२ वि० मानना पड़ता है, क्योंकि वे अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे (राणा साँगा का जन्म संवत् १४४६ वि० में हुआ था और अनुमानतः उनको २० वर्ष की अवस्था में पुत्र हुआ होगा)। इस प्रकार कुँअर भोजराज और मीराँ के जन्म संवत् की संगति बैठ जाती है। कुछ लोग मीराँ का जन्म संवत् १५५५ वि० भी मानते हैं, परन्तु इस धारणा से मीराँ अपने पति से आयु में बड़ी सिद्ध हो जाती है। इस हेतु जन्म-संवत् १५६० वि० मानना अधिक संगत जान पड़ता है।

मीराँ का बचपन माँ के दुलार में अधिक नहीं बीता। उसके जन्म के दो वर्ष के पश्चात् ही माँ का देहान्त हो गया। इस कारण राव दूदाजी ने मीराँ को उसके गाँव से बुला-

कर मेड़ते में ही पाला पोसा। वीरमसी के पुत्र जयमल के साथ मीराँ की बाल्यावस्था बीती। पितृकुल में सभी भक्त-हृदय वैष्णव थे। इसलिए सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मीराँ को बालपन से ही हिन्दू पौराणिक धर्म और उसके आधारभूत पुराणों से गाढ़ा परिचय हो गया होगा। मीरों को इस प्रकार की धर्म शिक्षा व्यवस्थित रूप में मिली भी थी, यह अब सिद्ध हो रहा है।* इससे अधिक ज्ञात करने के लिए कुछ भी सूत्र या सामग्री उपलब्ध नहीं है।

बाल्यकाल

मीरों का विवाह किससे हुआ? यह प्रश्न अब सुलझ गया है। सभी विद्वान् अब एक मत हैं कि कुँवर भोज-राज से मीरों का विवाह हुआ था। इस आशय का एक पद भी भक्त हरिदास का प्राप्त हुआ है—

विवाह

एक राणों गढ़ चित्तौड़ को।
मेड़तणी निज भगति सुभागे भोजराइजी का जोड़ा को।
हिलक मिलक हाल हुलाला पैठा गाड़ी मोड़ा को॥

असा सुखछाड़ि भयी वैरागिणि सादी नरपति जोड़ा की।
साइण वावण रथ पालकी कमी न इसती घोड़ा की ॥
सब सुख छाड़ि छनक मैं चाली लाली लगायी रणछोड़ा की।
ताल बजावै गोविंद गुण गावै लाज तजी घड़-लहोड़ा की ॥
निरति करै नीकों होइ नाचै भगति कुमावै बाई चौड़ा की।
नवों नवाँ भोजन भाँति-भाँति का करिहैं सार रसोड़ा की ॥
करि करि भोजन साथ जिमावै भाजी करत गिंदोड़ा की।
मन धन सिर सौंधा कै अरपण प्रीति नहीं मन थोड़ा की।
हरीदास, मीरों बड़भागणि सब रायणां सिरमोड़ा की ॥*

मीराँ का विवाह किस संवत् में हुआ? यह भी इतिहास-द्वारा ज्ञात नहीं होता है। हाँ, महाराज रघुराजसिंह ने 'राम-रसिकावली' में लिखा है कि मीराँ का विवाह उसके १२ वर्ष के वय में हुआ था। केवल इस आधार पर मीराँ का विवाह संवत् १५७२ वि० निकाला जा सकता है। विवाह की यह तिथि अन्य इतिहासज्ञ भी संगत ही मानते हैं।

कुँवर भोजराज और मीराँ का विवाहित जीवन किस रूप में वीता, कहना अति कठिन है। भक्तों ने इस जीवन के अंश के बारे में बहुत कुछ कल्पनायें की हैं।

विवाहित जीवन भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने लिखा है कि मीराँ को जब उसकी सास ने देवी पूजने को कहा तब मीराँ ने अस्वीकार कर दिया। सास ने हठ किया, तो मीराँ—

"बोली, तू विकायो मायो लाल गिरधारी हाथ।
और कौन नमै, एक वही अभिलाखियै॥"

---

*इस पद को प्रकाशित कराने का श्रेय बीकानेर निवासी प्रो० नरोत्तम दासजी स्वामी को है। 'राजस्थानी' जनवरी १९३९, पृ० ३८

सास ने समझाया—

"बदत सुहाग याके पूजे ताते पूजा करो ।"

पर मीरा ने कहना नहीं माना और सासजी जल उठीं। इस प्रकार की दंतकथाओं को हमें प्रवाद ही मानना चाहिए। एक सती साध्वी स्त्री भला कब सुहाग नहीं चाहेगी ? तब मीरां पर यह आक्षेप क्यों ? और चित्तौड़ का राजधर्म तो शैव था। सिसोदिया वंश का धर्म उदार था; राणा कुंभा परम वैष्णव हृदय वाले थे; तभी तो वे गीत गोविंद की टीका लिख सके थे। इस प्रकार के कई प्रसंग मीरां छाप वाले पदों में भी मिलते हैं। कई पदों में मीरां अपनी सास, ननद और पिव (पति) से अनबन कर लेती है, पर उन्हीं पदों के अन्य पाठों में कुछ और ही लिखा मिलता है। इसलिए जब तक प्रामाणिक पाठ भेद-सहित पद शुद्ध न कर लिये जायं, तब तक उनमें कुछ भी सार ग्रहण करना न्यायोचित नहीं होगा।

मीरां कब विधवा हुई ? यह तिथि भी इतिहास-द्वारा ज्ञात नहीं होती है। कुंवर भोजराज अपनी युवावस्था में

तभी तो इतिहास मौन है। इस हेतु देहांत की तिथि संवत् १५७५ वि० के लगभग ठहराई जा सकती है।

मीराँ के पिता रतनसी भी संवत् १५८४ वि० में चल बसे थे। पिता और श्वसुर के चल बसने पर मीराँ को अवश्य ही असहाय हो जाना पड़ा होगा, पर उनके जीवन काल में वह अति दुःखी नहीं हुई होगी।

विधवा मीराँ अपना सारा समय गिरधर-भजन और साधु-संतों की सेवा में लगाती होंगी। इससे मीराँ के देवर महाराणा विक्रमादित्य चिढ़ गये। ये महाराणा

विषपान

अयोग्य और अदूरदर्शी थे। इन्होंने अवश्य ही मीराँ को कई यातनायें दी होंगी। मीराँ के कई पदों में इस प्रकार के संकेत भी हैं। इतना तो निश्चित है कि इन्हीं राणा के काल में मीराँ को विष दिया गया था।* विष को अमृत मानकर मीराँ उसे पान कर गई और उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा। विषपान का उल्लेख नाभादास, प्रियादास, ध्रुवदास, दयाराम (लगभग संवत् १८०० वि० के 'मीराँ-चरित्र' और 'भक्तवेल' के २१ छन्दों में), राधाबाई ('मीराँ-महात्म्य') और दयाबाई (संवत् १८१० के लगभग 'विनय मालिका') आदि सभी ने किया है।

---

*स्व० मुंशी देवीप्रसादजी का कहना है कि राणा विक्रमादित्य के दीवान (जो जाति में वैश्य बीजावर्गी था) ने मीराँ को विष दिया था। फलस्वरूप मीराँ का शाप इस जाति पर ऐसा पड़ा कि उनकी सन्तान धनशाली न हो सकी। ऐसी इस जाति वालों की धारणा है।

दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयो।
बार न बाँको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो॥

—नाभादास।

× × ×

बंधुनि विष ताकों दियौ करि विचार चित आन।
सो विष फिरि अमृत भयो, तब लागे पछितान॥

—ध्रुवदास।

× × ×

गरल पठायो सो तो सीस लै चढ़ायो,
संग त्याग विष भारी, ताकी झार न सम्हारी है।

—प्रियादास।

× × ×

विष को प्याला मोर के राणा भेज्यो दान।
मीरो औषधी राम कहि हो गयो सुधा समान॥

—दयाबाई।

विषपान का असर मीरां पर कुछ न पड़ा। वह अपने भजन में निरंतर लीन हो रही होगी। मीरां के कुछ कहे जाने वाले पदों में उसकी और उसकी सास या श्वसुर का या पति का आशीर्वाद मिलता है। ये नितान्त झूठी कल्पनाएं हैं। मीरां और उसकी ननद ऊदाबाई का विवाद सम्भव हो हुआ हो, पर इसे पद रूप में किसने स्थान दिया, यह निश्चित [illegible] है। [illegible] कल्पनाएं तो [illegible] पाठ हैं। इनका नाम तो [illegible] में नहीं है, पर कुछ पदों में यह कहानी है—

होंगी। इतिहास से जान पड़ता है कि ईडर के राव सूर्यमल के पुत्र रायमल जब अपने चाचा भीम के डर से सिंहासन छोड़कर, राणा साँगा की शरण में आये तब रायमल की सगाई राणा ने अपनी पुत्री से कर दी थी। भीम के पश्चात् भारमल गद्दी पर बैठा। उसे संवत् १५७१ वि० में रायमल ने राणा साँगा की सहायता से गद्दी से उतार दिया और वह स्वयं राजा बना। इन्हीं ईडर के राव रायमल की पत्नी ऊदा, मीराँ की ननद थी। बहुत सम्भव है ननद ऊदा ने अपनी भाभी मीराँ को लोकलाज छोड़ने पर उसे बहुत कुछ कहा-सुना हो। मीराँ की दो सहेलियाँ चम्पा और चमेली थीं, ऐसा कई क्षेपक पदों से ज्ञात होता है; पर ये दोनों कल्पित ही ज्ञात होती हैं, क्योंकि ऐसे नाम राजस्थान में प्रायः नहीं होते और ये दोनों हैं भी फूलों के नाम। मीराँ की एक देवरानी 'अजबकुँवर बाई' गुसाईं विट्ठलनाथजी की सेवक थी। गुसाईंजी ने उसे मेवाड़ में जाकर दीक्षा दी थी। गुसाईंजी की प्रचार यात्राएँ संवत् १६०० वि० से आरंभ हुई थीं। इससे हम कह सकते हैं कि मीराँ की देवरानी अजबकुँवर बाई, मीराँ के मेवाड़-निवास के समय गुसाईं जी की भक्त नहीं हुई होगी। यह अजब कुँवर बाई, सम्भव है राव गांगा की पुत्री राजकुँवर बाई हो, जो मीराँ के देवर विक्रमादित्य की रानी थी।

अपने देवर से दुःखी होकर मीराँ ने मेवाड़ छोड़ा होगा। इसी बीच में मेवाड़ पर संवत् १५८६ वि० में गुजरात के पातशाह बहादुरशाह ने आक्रमण कर दिया। कुछ ही समय बाद उसने संवत् १५६१ वि० में पुनः आक्रमण किया। इस बार मेवाड़ पातशाह के हाथ पड़ गया। मीराँ इसी मध्य (संवत् १५६० वि०) में मेड़ता आ गई होगी। इस बार मीराँ

मेवाड़-त्याग

भक्ति के लिए मेवाड़ का त्याग करके मेड़ता आ गई। मेवाड़ में मीरां ने अपने वैधव्य के १५ वर्ष व्यतीत किये। इस अवधि में एक बार तो मीरा अवश्य अपने पीहर और आई होगी; सम्भव है पिता की मृत्यु पर आई हो।

मीरां अपने चाचा वीरमसी और उनके पुत्र जयमलजी के संग आनन्द में रहने लगी। मेड़ता का वातावरण सत्संग और भजन के अनुकूल पाकर वह एकाग्रचित्त मेड़ता में निवास होकर साधु-सेवा में लग गई होगी। चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता से ज्ञात होता है कि उसके यहां वैष्णव साधु-संतों की भीड़ लगी रहती थी। वे लोग कई कई दिन तक उसके यहां डेरा डाले भक्ति-चर्चा किया करते थे। यथा—"तहां हरिवंश व्यास आदि दे विशेष सब वैष्णव हुते। सो काहू कों आये आठ दिन, काहू कों आये दस दिन, काहू कों आये पन्द्रह दिन भये हुते। तिनकी विदा न भई हुती।" उक्त वार्त्ता में इस प्रकार के अन्य उल्लेख भी हैं। यथा "सो एक दिन मीरांबाई के श्रीठाकुरजी के आगे रामदासजी कीर्तन करत हते।"......और "एक समें गोविंद दुबे मीरां बाई के घर हते। तहां मीरांबाई सों भगवद् वार्त्ता करन लागे।"...

भेटियाँ कृष्णदास आदि वैष्णव धर्म-चर्चा और भगवद्-वार्त्ता के लिए अटक जाते थे। कृष्णदास की मीराँ से यह अंतिम भेंट ही हुई होगी। कृष्णदास ने भेटियाँ कर्म संवत् १५८२ वि० से १६०० तक ही किया था। मीराँ मेड़ते में संवत् १५६० से १५६५ वि० तक रही थी और इसी बीच कृष्णदास मीराँ के यहाँ आये होंगे।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता के उपर्युक्त प्रसंगों में यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि मीराँ वल्लभ कुल में दीक्षा ले चुकी थीं। हाँ, इतना अवश्य है कि मीराँ को किसी से द्वेष नहीं था। पर साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण वल्लभी वैष्णव मीराँ को बहुत अपशब्द कहकर उसकी अवहेलना किया करते थे। गोविंद दुबे मीराँ के यहाँ ठहरे हैं, यह जब गुसाईंजी को ज्ञात हुआ, तब उन्होंने, "एक श्लोक लिखी पठायौ। सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायो। तब वह ब्रजवासी चल्यौ। सो वहाँ जाय पहुँचौ। ता समय गोविंद दुबे सन्ध्यावन्दन करत हुते। तब ब्रजवासी ने आय के पत्र दीनो। सो पत्र बाँचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे। तब मीराँबाई बहुत समाधान कीयौ परि गोविंद दुबे ने फिरि पाछे न देख्यौ।"*

तनिक रामदासजी कीर्तनया की भी शब्दावली सुन लीजिये। मीराँ ने रामदासजी से कहा, "कोई दूसरा पद ठाकुरजी का गावो।" इस समय वे, 'श्री आचार्यजी महा प्रभु जी के पद गावत हुते।' इस बात पर रामदास जी बिगड़ उठे और बोले— "अरे दरी राँड यह कौन कौ पद है। यह कहा तेरे खसम कौ मूड़ है जो जा आज ते तेरौ मुहड़ौ न देखूँगो। तब तहाँ ते सब कुटुम्ब को लैकें रामदासजी उठि चले।"†

---

* वही, पृ० १६२। † वही, पृ० २०७।

कृष्णदास शूद्र भी पक्के वल्लभी वैष्णव हैं। वे भी मीरां के यहां से उठि चले। कैसे और क्यों ? पढ़िये—"कृष्णदास ने तो आवन ही कह्यो जो हूं तो चलूँगो। तब मीरांबाई ने कह्यो जो बैठो। तब कितनीक मोहर श्रीनाथजी कों देन लगी सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यो जो तू श्री आचार्यजी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत तातें तेरी भेंट हम हाथ तें छुवेंगे नाहीं। सो ऐसे कहि कें कृष्णदास यहां तें उठि चले।"[1] इसी प्रसङ्ग पर व्याख्या करते हुए गो० हरिरायजी ने अपने 'भावप्रकाश' में कृष्णदास के इस व्यवहार को शास्त्रोक्त बताया है।*

इन प्रसंगों पर विशेष कुछ न लिखकर हम इतना ही निर्देश कर देना चाहते हैं कि इनसे मीरां के आतिथ्य और अन्य धर्म के प्रति भी उदार हृदय की भावना विदित होती है। मीरां कृष्ण

प्रकार गौडीय धर्माचार्यों से प्रथम परिचय प्राप्त हुआ। कुछ का कथन है कि मीराँ की चैतन्य महाप्रभु से भी भेंट हुई थी; पर यह भेंट सम्भव नहीं ज्ञात होती है, क्योंकि महाप्रभु सं० १५७३ वि० में वृन्दावन पधारे थे और इस समय तो मीराँ अपने लौकिक पति-सुख में पगी चित्तौड़ की कँवरानी थी। मीराँ पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ) यदि गई भी होगी तो सं० १५९५ वि० के पश्चात् और इस समय तक महाप्रभु ने समुद्रलाभ (वि० सं० १५८४ में) कर लिया था। इस हेतु मीराँ का महाप्रभु से साक्षात्कार कभी हो नहीं सका होगा।

वृन्दावन में जाकर मीराँ अधिक भावुक बन गई होगी। मीराँ का श्वशुर-कुल और पितृकुल वैष्णव सा ही था, पर राजस्थान में उस समय निर्गुण एकेश्वरवादी संतों का अधिक बोलबाला था। उनमें गोपी-प्रेम की सरसता और उपास्य देव में माधुर्य का भाव अधिक जाग्रत नहीं था। मीराँ की वृन्दावन यात्रा ने उसे 'गोपी' बना दिया। स्वयं मीराँ ने कहा है—'पूरब जनम की मैं हूँ गोपी'। (नाभादास का कथन है—"सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलिजुगहिं दिखायो") इस प्रकार प्रेम-विह्वल गोपी, 'लोक लाज कुल शृङ्खला' तजि कर, नटवर नागर गोपी वल्लभ कृष्ण की भूमि में विचरण करने लगी। ध्रुवदासजी ने मीराँ के वृन्दावनवास के लिए लिखा भी है—"आनँद सों निरखत फिरै, वृन्दावन रसखेत", और—

"नृत्यत नूपुर बाँधिकै, नाचत लै करतार।
विमल हियौ भक्तिनि मिली, तृन सम गन्यो संसार॥"

मीराँ के वृन्दावन-वास के विषय में प्रियादास भी कहते हैं—

"देखी कुञ्ज कुञ्ज लाल प्यारी सुख पुञ्ज भरी,
धरी उर माँझ आप देस वन गायो है॥ ६॥"

और स्वयं मीराँ राग सारंग में गाती है—

आली-म्हाँ ने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंदजी को।
निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध दही को॥
रतन सिंघासण आप बिराजे, मुगट धर्‌यो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरली को॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको॥

मीराँ व्रजवासियों पर मुग्ध हो जाती है—

गोकुल के वासी भले ही आएं, गोकुल के बासी।
गोकुल की नारि देखत, आनंद सुखरासी॥
एक गावत एक नाचत, एक करत हाँसी।
पीतांबर फेटा बाँधे, अरगजा सुवासी।
गिरधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी॥

मीराँ वृन्दावन में रमकर भी वहाँ अधिक नहीं रह सकी। वह पुनः यात्रा को उद्यत हुई। नागरीदासजी इसका पता बताते हैं—"सब से गुरुगोविंद्वत सनमान सत्यसंग करि द्वारिका कौं चले, ऊहाँ वास करिवे कौं लियैं।" इस प्रकार नम्रशील मीराँ द्वारिका की ओर चली। उसके वृन्दावन-त्याग का कारण प्रियादास बताते हैं—"राना की मलीन मति देखि बसी द्वारावती"। ये राणा कौन थे? इसका पता अटकल से लगाया जा सकता है। चित्तौड़ का राज्य पातशाह बहादुरशाह के हाथों से पुनः संवत् १५९२ वि० में छीन लिया गया। संवत् १५९३ वि० में महाराणा रायमल-के राजकुमार पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र बनवीर विक्रमादित्य को मारकर गद्दी पर बैठ गया। पर बनवीर भी दो-एक साल में गद्दी से हटाया गया और विक्रमादित्य के छोटे भाई उदयसिंह संवत् १५९४ वि० में राजा हुए। इन्होंने

संवत् १५९७ वि० तक अपने सारे पैतृक राज्य पर अधिकार जमा लिया। सम्भव है इन्हीं राणा ने वृन्दावन में नूपुर बाँध कर करतार लेकर नृत्य करनेवाली मीराँ को ठीक करना चाहा हो। पर ये मीराँ को समझा न सके होंगे। इस पर मीराँ दूर देश द्वारावती को चल पड़ी।

मीराँ का वृन्दावन-आगमन लगभग संवत् १५९५ वि० है तो वृन्दावन-त्याग संवत् १५९७ के पश्चात् ही हुआ होगा। मीराँ के चाचा वीरमसी ने इधर संवत् १६०० वि० में मेड़तेपर पुनः अधिकार जमा लिया, पर वे दो मास पश्चात् इहलोक छोड़ चले। उनके पश्चात् उनका पुत्र जयमल गद्दी पर बैठा। पितृकुल से अवश्य ही मीराँ के पास स्वगृह लौटने का निमंत्रण गया होगा, पर मीराँ मेवाड़ और मेड़ते से अब मोह छोड़ चुकी थी। *इसी समय (संवत् १६०० वि०) के लगभग मीराँ ने वृन्दावन छोड़ा होगा।

द्वारका-वास

मीराँ प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर ही द्वारका गई होगी। श्वसुर कुल के साथ पितृकुल से भी लौट आने का प्रस्ताव बराबर आता रहा होगा। मीराँ के पुनः चचेरे भाई भक्त जयमलजी ने संवत् १६०० वि० में मेड़ता पाकर मीराँ को लाने का अवश्य स्निग्ध प्रयत्न किया होगा। यह प्रयत्न संवत् १६०० वि० से आरंभ हो गया होगा। उधर मीराँ की उत्कट इच्छा थी—"राय श्रीरणछोड़

---

* मीराँ द्वारका-वास की इच्छा प्रकट करते हुए श्रीरणछोड़ भगवान् से एक पद में कहती भी है—

तज्यौ देसरु वेसहू तजि तज्यो राना राज।
दास मीराँ सरन आवत तुमैं अब सब लाज॥

दीज्यो द्वारिका को वास।" प्रियादास राणा के प्रयत्न को प्रायश्चित्त के रूप में इस प्रकार प्रकट करत है—

लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि,
अति दुःख मानि, विप्र श्रेणी लै पठाइयै ॥
वेगि लैके आवौ मोंको प्रान दे जिवावौ,
अरो गयो द्वार धरनौ दै विगती सुनाइयै ॥

मीराँ के नाम सन्देश पर सन्देश आते रहे होंगे। उसका द्वारकावास बहुत अधिक समय का नहीं रहा होगा। मीराँ के सङ्ग में भी पुरोहित आदि जो सहायक पुरुष थे, वे मीराँ को निश्चिन्त बैठने नहीं देते होंगे, पर मीराँ का मन अब घर लौटने का था नहीं। इस हठ का प्रभाव मीराँ पर नहीं पड़ा। पुरोहित और भृत्य आदि मीरा को ले जाने के लिए धरना धर कर (सत्याग्रह कर) के बैठ गये होंगे। इस अवसर का थोड़ा सा वर्णन नागरीदास करते हैं—"द्वारिका पहुँचे, तहाँ कोई दिन रहे ता पीछें मीराँबाई के संग प्रौहितादिक जे राना के लोक हे, तिन कह्यो अब बहुत दिन भये हैं अब देस क चलो, राना की आज्ञा हैं, ऐसैं द्वौ तीन दिन तो कह्यो, फिरि मीराँबाई परि धरना कियो।" इस स्थिति से तो ज्ञात होता है कि द्वारका पहुँचने के क या दो वर्ष के भीतर ही मीराँ को वहाँ से ले जाने का प्रयत्न आरम्भ हो चुका था। मीराँ के इस समय के बनाये पदों से ज्ञात ता है कि वह भवत्रास और बंधु बांधवों से ऊबकर, प्रभु-प्रेम बावली हो गई थी। वह स्वयं कहती है—"त्रास न भूप रैन [illegible] यह तन पल पल छीजै"—इस हेतु वह कामना करती —"सजन सुधि ज्यों जानैं त्यों लीजैं।"

अंत

मीराँ को विश्राम नहीं मिला। "तब मीराँबाई ठाकुर श्री रणछोड़ जू सों विदा व्हैवे कों नाँच लै मंदिर में अकेले ही जाय महाआरति सहित एक नयो पद बनाय गायो। सो यह पद गायें हूँ उत तैं न टरे, तब महाआरति प्रेमावेस सहित एक और पद बनाय गायो तब ही ठाकुर आप मैं उनकौं याही सरीर तैं लीन करि लीनें देह हू न रही।" मीराँ अपने प्रिय उपास्य देव में समा गई और कहा जाता है कि मूर्ति के मुँह से मीराँ के चीर का एक छोर मात्र दिख पड़ रहा था। प्रियादास मीराँ के अंतिम दर्शन का यह वर्णन करते हैं—

"सुन विदा होन गई राय रणछोड़ जू यैं।
छाँड़ौ राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै।"

मीराँ प्रभु में लीन हो गई और उसके लौकिक जीवन का पटाक्षेप हो गया।

मृत्यु संवत्

मीराँ का द्वारकावास संवत् १६०० वि० से आरम्भ हुआ होगा और शीघ्र ही उसको लौटाने के लिए उपर्युक्त उग्र प्रयत्न किये गये होंगे। इनके फल स्वरूप मीराँ, रणछोड़रायजी में लीन हो गई। मीराँ के द्वारकावास को हम किसी भी दशा में दो वर्ष से अधिक का नहीं अनुमान कर सकते है। इस हेतु मीराँ की मृत्यु द्वारका में संवत् १६०२ वि० में हुई—यह माननी चाहिए।

इस निर्णय से भिन्न कई विद्वानों ने मृत्यु-संवत् दिये हैं। उन तिथियों को भी हमें परख लेना चाहिए। अधिकांश विद्वान् मीराँ और तुलसी के पत्र के व्यवहार और मीराँ और अकबर की भेंट को सत्य मानकर मीराँ को दीर्घजीवी मानते हैं, पर ये दंत कथायें नितान्त अप्रामाणिक हैं। इन पर विचार आगे किया जा रहा है।

इस भ्रम के अतिरिक्त मीराँ का मृत्युकाल इस प्रकार भी माना जाता है—

१—स्व० राधाकृष्णदासजी सं० १६११ वि० के पश्चात् मीराँ का जीवित रहना मानते हैं। इसका आधार आगरे में एक गरुड़जी की संगमर्मर की मूर्ति पर उत्कीर्ण दो लेख हैं। इनमें से एक लेख को वे मीराँबाई की मूर्ति-स्थापना के समय का मानते हैं। पर यह अनुमान वास्तव में कोरी कल्पना ही है, क्योंकि मीराँ से इसका कुछ भी संबंध नहीं जान पड़ता है। और लेख में भावसिंह का नामोल्लेख भी है जो संवत् १६७१ वि० में राजा हुए थे। वास्तव में उत्कीर्ण लेख में संवत् १६११ वि० नहीं वरन् १६७१ होगा। सम्भव है, यह लेख स्वयं भावसिंह द्वारा खुदवाया गया हो।

२—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मीराँ का निधन संवत् १६२० से १६३० वि० के मध्य में हुआ मानते हैं। आपने उदयपुर दरबार की सम्मति से यह मत निश्चय किया था, पर इस निर्णय का क्या आधार है ठीक से पता नहीं चलता है। मीराँ और अकबर की भेंट जैसी कोई दंतकथा ही इसका आधार होगी। कुछ भी हो मीराँ संवत् १६०२ के पश्चात् जीवित ही नहीं रही, यह हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं।

३—सूर के नाम से एक पद प्राप्त होता है, जिसमें कवि ने कई भक्तों के नाम गिनाये हैं। इस नामावली में वल्लभ और मीराँ भी हैं। यह पद वल्लभाचार्य के गंगालाभ (वि० सं० १५८७) और सूर के निधन (वि० संवत् १६२० या १६४० ?) के मध्य में ही लिखा गया होगा। पर इससे मीराँ के काल का पता लगाना उचित नहीं है, क्योंकि इस पद को अप्रामाणिक मानकर ही तो संशोधित सूरसागर में इसे स्थान नहीं दिया गया

है। सूर ने प्रथम तो वल्लभ का नाम केवल अपने अंतिम पद में ही लिया है, अन्य किसी स्थान पर नहीं लिया है और फिर उन्होंने पौराणिक भक्तों के नामों को छोड़कर केवल नामदेव का ही नाम एकाध स्थान पर लिया है। वैसे वे भक्तों क नाम गिनाने में संयत ही रहे हैं।

४—मुंशी देवीप्रसादजी ने राठोड़ों के भूमिदान भाट (गाँव लूणवो, परगनो भारोठ, प्रान्त मारवाड़ निवासी) से सुना था कि मीराँ का देहान्त संवत् १६०३ वि० में हुआ था, पर कहाँ हुआ यह उसे ज्ञात नहीं था। यह संवत् १६०३ वि० इतिहास में सर्व सम्मत हो रहा है। पर गत तिथियों को निर्धारित करते समय हमें मानना पड़ा था कि मीराँ का द्वारका-वास बहुत अल्प काल का रहा होगा। इस हेतु मीराँ का निधन अवश्य ही संवत् १६०२ वि० तक हो चुका होगा, जो उपर्युक्त भाट के कथन से अनुकूल ही पड़ता है।

हमारे इस मीराँ के जीवन-वृत्त की (लगभग) निर्धारित तिथियाँ इस प्रकार हैं—

जन्म	*१५६० वि० संवत्।*
विवाह	*१५७२ ,,*
पति की मृत्यु	*१५७५ ,,*
मेवाड़-त्याग	*१५९० ,,*
मेड़ता-वास	*१५९० से १५९५ तक।*
वन्दावन-वास	*१५९५–१६०० तक।*
द्वारका-वास	*१६००–१६०२ तक।*
देहांत	*१६०२ वि० संवत्।*

दंत कथायें

मीराँ के विषय में अनेक चमत्कारी कथायें प्रसिद्ध हैं। मौखिक दंतकथाओं और क्षेपक पदों में वर्णित घटनाओं के अतिरिक्त कई लिखित कथायें भी हैं जो कोरी मनगढंत कल्पनायें ही हैं। प्रथम हम क्षेपक पदों में वर्णित घटनाओं को लेंगे। इन पदों में अधिकतर सास-बहू की वाक्-चर्चा और ननद-भाभी की कहा-सुनी है। इन पदों को यदि स्वर सहित पाठ किया जाय तो ये किसी नाटक के सजीव कथानक जान पड़ेंगे। राणा-मीराँ के सवाद भी बहुत मुँहफट उत्तर वाले हैं। कुछ भी हो मीराँ स्वयं कभी इन पदों की रचयित्री नहीं हो सकती। ये पद तो अपना वैभव बढ़ाने वाले साधु-संतों के प्रयास के फल जान पड़ते हैं। इस हेतु इन पदों में अन्तर्साक्ष्य खोजना अन्याय होगा।

मीराँ की गिरधर-भक्ति इतनी प्रबल हो उठी कि उसके चरित सभी साधु-संतों में फैलने लगे और अपने-अपने सम्प्रदाय की वैभव-वृद्धि चाहने वाले भक्तों ने मीराँ का नाम अपने सम्प्रदाय से किसी न किसी प्रकार जोड़ लिया।

इस नीति का प्रमुख उदाहरण है—तुलसी-मीराँ का पत्र व्यवहार। मूल गुसाईं चरित (३१-३२) में लिखा है कि मीराँ का सुखपाल ब्राह्मण नामक दूत तुलसीदास के पास (संवत् १६१६ और १६२८ वि० के मध्य में) पत्र लेकर गया। तुलसीदास ने गीत कवित्त बनाकर 'सब तजि हरि भजिबो भलो' का उपदेश लिख भेजा। जनश्रुति एक पद भी प्रकट करती है जो मीराँ ने तुलसीदास को लिखा था। और इसका उत्तर तुलसी ने "जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम" वाला पद बनाकर दिया। कुछ लोग इस पद के अतिरिक्त कवितावली का एक सवैया भी तुलसी के दिये हुए उत्तर में जोड़ते हैं। इस मीराँ-तुलसी-चर्चा को सत्य मानकर मीराँ के विषय में लिखनेवाले कई लेखक भ्रम में पड़ गये हैं। और वे इसको असत्य मानने वालों को ही भ्रान्त समझते हैं।*

पर वस्तु स्थिति तो यह है कि मीराँ का देहांत इस घटना काल के बहुत पहले ही हो चुका था। यह सब पदों का मिथ्या प्रसंग लोगों ने 'मूल गुंसाईं चरित' पढ़कर गढ़ा होगा और 'चरित' के संबंध में इतना अवश्य जान लें कि यह अयोध्या के किसी 'भवन' का जाल है।

---

*प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी कथन है—'मीराँ और गोस्वामीजी का यह पत्र-व्यवहार अनैतिहासिक नहीं है जैसा कि कुछ लोगों ने माना है। गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ में हुआ था और इस समय तक उनकी ख्याति हो जाना असम्भव नहीं है। ('मीरा-मन्दाकिनी' पृ० ७ प्रस्तावना)।' इस कथन का आधार है—गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५५४ वि०। इस जन्म संवत् को हम रघुवरदास कृत 'तुलसी चरित' और वेणीमाधवदास कृत 'मूल गुसाईं चरित' में पाते हैं। पर ये दोनों रचनायें अप्रामाणिक सिद्ध हो चुकी हैं। प्रथम को तो प्रो० स्वामी भी

वल्लभ कुल की चौरासी वैष्णवन की वार्ता के तीनों प्रसंगों पर हम जीवन-वृत्त वाले अध्याय में लिख चुके हैं। यहाँ पर २५२ वैष्णवन की वार्ता के एक प्रसंग पर विचार करेंगे। पंद्रहवीं वार्ता में मेड़ता निवासी हरिदास बनिये का प्रसंग है। इन हरिदास बनिये के सामने ही जयमल राजा की बहिन का भवन था। सो एक बार गुसाईं विट्ठलनाथजी बनिये के यहाँ ठहरे। तब राजा जयमल की बहन ने गुसाईंजी को पत्र लिखकर, अपने आपको सेवक बनाया। इस जयमल की बहिन को डॉ० रामकुमार वर्मा आदि मीराँ ही मानते हैं। यह उचित नहीं है। प्रथम तो जयमल जब राजा बने तब (वि० संवत् १६००) मीराँ मेड़ते में नहीं थीं और वार्ताकार का कथन है कि राजा की बहिन, "परदे में रहती थीं।" फिर

अप्रामाणिक मानते हैं, पर दूसरी रचना के संबंध में उनकी सम्मति है—"मूल गुँसाईं चरित की कई घटनाएँ और कुछ संवत् इतिहास की दृष्टि से ठीक नहीं बैठते।" त्रिमूर्त्ति, पृ० १५०। पर गोस्वामीजी का जन्म संवत् प्रो० स्वामी के मत में "शिष्य परम्परा और गुँसाईं चरित के अनुसार संवत् १५५४ है। हमारी सम्मति में संवत् १५५४ ही ठीक है।" वही, पृ० १५२।

इस चर्चा का निर्णय यही है कि गोस्वामी का जन्म संवत् आधुनिक शोध कुछ भिन्न ही बताती है। इसके अतिरिक्त, मीराँ का गृह कलह से उकताकर पत्र लिखना स्वाभाविक नहीं ज्ञात होता है। पत्र की भाषा, सम्बोधन और शैली के विषय में कुछ विपरीत कहा जा सकता है। हमें तो यह नितांत कल्पित घटना जान पड़ती है। साधारण रूप में, इस चर्चा से स्मरण आ जाता है उन पत्रों का जो गृह दाह या गृह कलह से पीड़ित होकर विधवायें, सम्पादक 'चाँद' (प्रयाग) को लिखा करती थीं। अथवा जो आज भी सम्पादक 'कल्याण', (गोरखपुर) को मिलते हैं, और उनका उत्तर भी बहुधा नीति पूर्ण (तुलसी जैसा ही) भेजा जाता है।

भला परदे के जीव को -मीराँ समझना मुक्त-मीराँ को नहीं समझना है। इस वार्ता से कैसे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि मीराँ गोकुलनाथ की समकालीन थी, क्योंकि मीराँ की मृत्यु के ६ वर्ष पश्चात् संवत् १६०८ वि० में गोकुलनाथ का जन्म हुआ था।

एक और घटना पर विचार कर लेना चाहिए, जिससे भ्रम में पड़ कर कई अन्वेषकों ने मीराँ को दीर्घजीवी माना है। प्रियादास कहते हैं—

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,
लिये सङ्ग तानसेन, देखिबे को आयौ है।
निरखि निहाल भयौ छबि गिरधारी लाल,
पद सुखलाज एक तब ही चढ़ायो है॥

हाँ, तो पातशाह अकबर 'रूप की निकाई' से मोहित होकर तानसेन को संग लेकर मीराँ को देखने आये। यह घटना भक्तों की कल्पनामात्र है, क्योंकि मीराँ के देहान्त के समय, अकबर (जन्म संवत् १५९९ वि०) तीन वर्ष का नन्हा-सा बालक था। यदि थोड़ी देर के लिए मीराँ को दीर्घजीवी माना भी जाय तो तानसेन (जो अकबरी दरबार में १२ रमजान ९६९ में आया था) का प्रसंग जोड़कर इस मीराँ के अकबर और तानसेन से साक्षात्कार होने की घटना का अनुमान करें तो वह नितान्त ही कल्पित जान पड़ेगी। इस हेतु यह घटना कोई भी ऐतिहासिक महत्व नहीं रखती है।

प्रियादास आदि भक्तमाली गाथाकारों ने मीराँ-चरित की कई चमत्कारी घटनाओं को लिखा है। उन सबका खंडन करना यहाँ इष्ट नहीं है। हमने उन्हीं घटनाओं को लिया है जिन दन्तकथाओं के आधार पर मीराँ के जीवन-वृत्त के संबंध में भ्रम होता रहता है।

काव्य

ग्रंथ

मीराँ-रचित कितने ग्रन्थ हैं इस पर सभी विद्वानों ने लिखा है, पर सभी ने इधर उधर से पढ़कर उन्हीं विचारों की पुनरावृत्ति की है। मीराँ-रचित ग्रन्थों के नाम हिन्दी-संसार को किस प्रकार मिले हम इन प्राप्ति-स्थानों पर ही प्रथम ध्यान देंगे। सर्व प्रथम मुंशी देवी प्रसादजी ने 'राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज' (संवत् १९६८) में (पृ० ५, ९, १२ और १७ पर) मीराँ रचित चार रचनायें मानी हैं। यथा—

१—गीत-गोविन्द की टीका (गीत-गोविन्द की भाषा टीका)
२—नरसीजी रो माहेरो (नानीबाई की पहरावनी का वर्णन)
३—फुटकर पद (दस भक्तों का पद संग्रह)
४—राग सोरठ पद संग्रह (कबीर, नामदेव और मीराँ के पद)

म० म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा मीराँ रचित 'राग गोविंद' ग्रंथ का और 'मीराँ की मलार' का उल्लेख करते हैं। श्री के० एम० झवेरी मीराँ रचित 'गर्वा गीत' (गुजरात में प्रचलित) भी मानते हैं। इस प्रकार मीराँ की इन सात रचनाओं के नाम

हिन्दी संसार में घर कर गये हैं। अब इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार करना चाहिये।

१. नरसीजी रो माहेरो*—मुंशी देवी प्रसादजी ने इस रचना के आदि, मध्य और अंत के कुछ अंश प्रकाशित भी कराये हैं। पर उन अंशों को देखने से रचना मीराँ के अंतिम काल की रची नहीं ज्ञात होती है। यह रचना यदि बनी भी होगी तो संवत् १६०० और १६०२ वि० के मध्य में। पर रचना की भाषा बहुत शिथिल है। मीराँ की सखी 'मिथुला' का सम्बोधन खटकता है। जब तक यह पूरी रचना हमारे समक्ष नहीं आ जाती है, तब तक इस पर कुछ भी कहना कठिन है। मुंशीजी ने जिस 'हस्त लिखित संग्रहालय' से इस पुस्तक का विवरण लिया था, वहाँ यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है। कुछ लोगों ने रत्ना खाती (बढ़ई) कृत इसी शीर्षक के ग्रन्थ को भ्रमवश मीराँ रचित मान भी रखा है।

'नरसीजी रो माहेरो' के आदि, मध्य और अंत के अंश ये हैं :—आदि—

राग जङ्गला की ठुमरी

गनपति कृपा करो गुण सागर, जन को जस सुभगाय सुनाऊँ।
पछिम दिशा प्रसिद्ध धाम सुख, श्री रणछोड़ निवासी।
नरसी को माहेरो मङ्गल गावे, मीराँ दासी ॥१॥
क्षत्री वंस जनम मम जानो, नगर मेड़ते वासी।
नरसी को जस बरन सुणाऊ नाना विध हुति दासी ॥२॥

---

*राजस्थान और गुजरात में प्रचलित एक प्रथा है। अपनी पुत्री और बहिन की संतान के विवाह पर पिता जो 'पहरावनी' (कपड़े आदि) ले जाता है, उसे 'माहेरो' (भात भरना) कहते हैं। नरसी के लिए भगवान

सखा आपने संग जु लीन, हर मन्दिर पे आए।
भक्ति कथा आरंभी सुन्दर, हरि गुण सीस नवाए॥ ३॥
को मंडल को देस बखानूँ, संतन के जस वारी।
को नरसी सो भयो कोन विध, कहो महिराज कुँवारी॥ ४॥
है प्रसन्न मीराँ तब भाख्यो, सुन सखि मिथुला नामा।
नरसी की विध गाय सुनाऊँ, सारे सब ही कामा॥ ५॥

मध्य—

राग जैजैवन्ती

सोवत ही पलका में मैं तो, पल लागी पल में पिऊ आए।
मैं जु उठी प्रभु आदर दैन कूँ जाग परी पिउ ढूँढ न पाए॥ १॥
और सखी पिव सोय गमाए, मैं जु सखि पिव जागि गमाए॥ २॥
आज की बात कहा कहूँ सजनी, सपना में हरि लेत बुलाए॥ ३॥
वस्त एक जब प्रेम की पकरी, आज भए सखि मन के भाए॥ ४॥

अंत—

यौ माहरो सुनैरु गुँनिहै, बाजे अधिक बजाय।
मीरों कहै सत्य करि मानो, भक्ति मुक्ति फल पाय॥ ६॥

२—गीत गोविन्द की टीका—यह भाषा टीका वास्तव में महाराणा कुंभ द्वारा रचित है, पर मीराँ के नाम से जोड़ दी गई है। इतना ही क्या? लोगों ने तो मीराँ को कुंभ की रानी तक बना दिया था।

३—फुटकर पद (या प्रकीर्णक पद)—स्वतंत्र ग्रंथ न हो कर मीराँ के पदों का संग्रह है, जिसमें कई भक्तों के पद भी सम्मिलित हैं। हस्तलिखित पुस्तक का विवरण लेनेवाले ने व्यर्थ ही इस संग्रह को मीराँ रचित लिख कर एक नई समस्या खड़ी कर दी है।

कृष्ण ने उसकी पुत्री नानीबाई का जो 'माहेरा' भरा था वह प्रसिद्ध ही है।

४—राग सोरठा रा पद*—यह ग्रंथ हमने स्वयं ध्यान पूर्वक देखा है। इसमें कबीर, नामदेव और मीराँ रचित केवल राग सोरठ के पद हैं। बहुत प्राचीन पद संग्रह विषयानुसार विभाजित न किये जाकर राग के आधार पर बाँटे जाते थे। पुष्टि मार्ग के कीर्त्तन-संग्रह इसका सुंदर उदाहरण हैं। सम्भव है संतों को राग सोरठ प्रिय रहा हो और किसी भावुक ने इस राग के सभी पदों को एकत्र कर लिया हो। पर यह स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है।

५—राग गोविन्द—इसका शीर्षक कुछ विचित्र है, क्योंकि कोई गोविन्द राग तो होता नहीं है। सम्भव है मीराँ के जिन पदों में गोविंद का गुण गान हो उनके संग्रह को किसी ने यह नाम दे दिया हो।

६—मीराँ की मल्हार—सम्भव है मीराँ द्वारा गाई जाने वाली मल्हार विशेष होगी। (इस शीर्षक का एक लेख 'संगीत' मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ था, पर वह हमारी मीराँबाई से सम्बद्ध नहीं है।) इस मल्हार के संबंध में हमने कई गुणीजनों से पूछा भी है, पर सन्तोष-जनक उत्तर नहीं मिला है। 'म' के अनुप्रास के फेर में कोई 'मल्हार' इस प्रकार प्रसिद्ध हो गया हो?

७—गर्वा गीत—गुजरात में प्रचलित मीराँ रचित कहे जाने वाले गरबा गीत, अधिकांश में क्या पूर्णतः मीराँ रचित नहीं हैं। ऐसे गीतों की तर्ज आधुनिक है और भाषा भी बहुत बाद की चलती गुजराती है। इस हेतु इन गरबा गीतों को अप्रामाणिक ही मानना चाहिए। गुजरात में छपी मीराँ पदावली प्रायः इन क्षेपकों से भरी होती है।

---

*लेखक के पास इस सोरठ के पदों की दो प्रतियाँ हैं।

ग्रंथ

उपर्युक्त पर्यालोचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि मीराँ ने किसी ग्रन्थ विशेष की रचना नहीं की। वह पद मात्र बनाती थी, जिन्हें सुनकर लोग लिख लिया करते होंगे। इन पदों का संग्रह स्वयं मीराँ ने किया हो, यह सम्भव नहीं जान पड़ता है। हमें मीराँ रचित पदावली को ही मीराँ की रचना मानना चाहिए। मीराँ ने इस पदावली को कोई विशेष नाम नहीं दिया था। और संग्रह-कर्त्ता भी इसका नाम देने में एक मत नहीं हैं।

मीरा-पद्यावली

मीराँ के नाम पर प्रचलित राजस्थानी, ब्रज भाषा, खड़ी बोली, गुजराती, मराठी, और पंजाबी भाषाओं में कोई ५५० पद हस्त लिखित, मौखिक या प्रकाशित रूप में मिलते हैं। इन पदों में पाठांतर बहुत अधिक हैं। कबीर के पदों की जो दशा हुई है, वही मीराँ के पदों की भी है। पर इन पदों का संग्रह करके हमने मीराँ के जीवन वृत्त के आधार पर दंत कथाओं का त्याग करते हुए जब पदों को शुद्ध करना चाहा तो लगभग १५० पद छूँट गये। हिन्दी के अन्य कवियों (जैसे कबीर, नामदेव, सूर, नरसी, धर्मदास आदि) के लगभग ३० पद मीराँ के नाम पर जुड़े पाये गये। और कुछ पदों में मीराँ की उच्छृङ्खलता का इतना स्पष्ट वर्णन है कि वे केवल संतों की ही सूझ जान पड़ते हैं। इन सब आधारों पर मीराँ के पदों को शोधा गया तब मीराँ द्वारा कहे जा सकने वाले ३६० के लगभग पद हमने पाठ भेद सहित एकत्र किये हैं, जो मीराँ पर लिखे गये हमारे वृहद् ग्रन्थ के परिशिष्ट में प्रकाशित होंगे। प्रस्तुत ग्रंथ के अंत में हमने १०८ चुने हुए पद ही दिये हैं, जो मीराँ के काव्य के सौष्ठव के परिचायक हैं।

युग

राजस्थान का धार्म्मिक साहित्य, अधिकतर शक्ति प्रशंसक, शैव, और संतमार्गी था, पर देश की गति के साथ साथ वहाँ भी वैष्णव धर्म का प्रचार बढ़ता गया और राम और कृष्ण नव साहित्य के आधार बन गये। दक्षिण में नामदेव और तुकाराम के अभंगों के पश्चात् नरसी भक्त वैष्णव-पद बना चुके थे। उत्तरी भारत और बंगाल में जयदेव, विद्यापति, चंडीदास आदि के काव्यों के आधार पर पद-रचना होने लगी थी। इन्हीं दिनों मीराँ का आविर्भाव हुआ।

गुरु

मीराँ की साधना की थाह लगाने के लिए हमने देशकाल को आँक लिया, पर मीराँ के गुरु कौन थे—इस समस्या को भी सुलझा लेना चाहिए, क्योंकि बहुधा शिष्यों की साधना गुरु के सिद्धान्तों के आधार पर अवलंबित रहती है। मीराँ के बाल्यकाल के गुरु उसे पौराणिक कथाओं से अधिक कुछ भी ज्ञान न दे सके होंगे। पर इससे सिद्ध हो जाता है कि मीराँ की अभिरुचि धर्म के प्रति बचपन से ही थी। वैष्णव परिवार में पलने से वह वैष्णव धर्म के अनुकूल ही थी और वहाँ भी वह किसी विपरीत दशा में नहीं थी। विधवा हो जाने पर वह भक्ति में लग गई। तब किसी गुरु से मीराँ ने ज्ञानलाभ या सत्संग किया था या नहीं—यह प्रश्न हमारे सम्मुख है।

मीराँ के विषय में लिखने वाले सभी विद्वानों ने अनुमान लगाये हैं, पर वे किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं। हम प्रमुख दो मतों पर विचार करेंगे—

१. गुरु रैदास—बीकानेर निवासी प्रो० नरोत्तमदास स्वामी का कथन है—"अनेक पदों से मालूम होता है कि महात्मा रामानन्दजी के शिष्य रैदासजी इनके गुरु थे। पर दोनों का सम-

कालीन होना सिद्ध नहीं होता। संभव है कि मीराँबाई पर रैदास जी की बानी का प्रभाव पड़ा हो और उन्होंने रैदासजी को अपना गुरु मान लिया हो।" ठीक यही विचार स्व० डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वालजी के भी थे। आपने कई प्रमाणों द्वारा सिद्ध भी किया है कि गुरु को बिना देखे ही कई मनुष्य, उनके शिष्य बन गये हैं। बाद के कई लेखकों ने दबे स्वर में इसी मत को अपनाया है। इस मत के समर्थक अपना निश्चय मीराँ पदावली में आई संत मार्गी शब्दावली और 'जोगी' उल्लेख के कारण भी करते हैं। अब हम इस मत पर विचार करेंगे।

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के कथनानुसार मीराँ के अनेक पदों में 'रैदास' का उल्लेख है। यह ठीक नहीं जान पड़ता है। प्रो० स्वामी द्वारा प्रकाशित 'मीराँ-मन्दाकिनी' में ऐसा एक भी उल्लेख नहीं है। हाँ, मीराँ-शब्दावली (बलवेडियर) में तीन स्थानों (पृ० २०, २५ और ३७) पर उल्लेख अवश्य मिलते हैं। इन तीनों पदों से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि मीराँ को रैदास गुरु मिले, अर्थात् रैदास गुरु से मीराँ का साक्षात्कार हुआ। इस हेतु मीराँ (जन्म संवत् १५६० वि०) का साक्षात्कार कबीर-कालीन रैदास (मृत्यु संवत् १५५० वि० के लगभग) से होना तो असम्भव है। और इन उल्लेखों से इतना तो जान पड़ेगा कि मीराँ ने रैदास को बिना देखे गुरु नहीं बनाया है। तब हमें इस रैदास का पता लगाना चाहिए।

इस 'रैदास' की समस्या का कारण यह है कि अभी तक विद्वानों की धारणा है कि रैदास एक ही हुए हैं। वास्तव में रैदास के अनुयायी भी रैदास ही कहलवाये। भक्तमाल में उल्लिखित 'चीटलदास' को हम देखेंगे जिसे जगत् रैदास मानता था। रैदास के उपरान्त रैदास नाम व्यक्तिवाचक न रहकर समूची जाति का

द्योतक बन गया। कबीर-कालीन रैदास, मीराँ की सास की सास (राणा साँगा की पत्नी) झाली रानी के गुरु थे। इन्हीं रैदास की परम्परा के रैदासी यदि मीराँ के भी गुरु हों तो विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। मीराँ के गुरु बीठलदास (रैदासी) से परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए—

आदि अंत निर्वाह भक्त पद रज व्रत धारी।
रह्यो जगत सों एँड तुच्छ जाने संसारी॥
प्रभुता पति की पधति, प्रकट कुल दीप प्रकासी।
महत सभा में मान, जगत जानै रैदासी॥
पद पढ़त भई परलोक गति, गुरु गोविंद जुग फल दिये।
'बीठलदास' हरिभक्त के, दुहूँ हाथ लाडू लिये॥

—नाभादास।

इन रैदास का जो परिचय है, वह मीराँ के गुरु होने के अनुकूल ही है। बीठलदास 'भक्त पद रज व्रत धारी' हैं। 'जगत सों एँड' लगाकर, संसार-वासियों को इन्होंने तुच्छ माना, पर भक्ति के कारण इनका 'महत सभा में मान' होता रहता था। गोविंद गुण गान करते उनकी 'पद पढ़त भई परलोक गति'। ठीक यही लक्षण मीराँ के भी हैं। वह भी 'लोक लाज कुल शृंखला तजि' 'निर अंकुस अति निडर' होकर 'भक्ति निसान बजाय के, काहू ते नाहिन लजी'। मीराँ और बीठलदास दोनों ही 'पद पढ़त भई परलोक गति' के भागी बने हैं। इस सम्बन्ध में इतना और जान लेना चाहिए कि रैदास श्री सम्प्रदाय के भीतर थे। नाभादासजी ने रामानंदजी की गणना भी इसी सम्प्रदाय के भीतर की है। अस्तु! ये रैदास मीराँ के गुरु हो सकते हैं।

उपर्युक्त तीन स्थलों पर ही रैदास का नामोल्लेख मीराँ द्वारा हुआ है, कोई 'अनेक पदों' में नहीं। पर इन पदों की प्रामाणि-

२—गुरु जीव गुसाईं—श्रीवियोगी हरि ने एक पद के आधार पर मीराँ को चैतन्य की शिष्या सिद्ध करना चाहा है। आपका मत है कि मीराँ को जीव गुसाईं ने दीक्षा दी थी। इस धारणा का आधार क्या है—पता नहीं, पर जो पद प्रस्तुत किया जाता है वह यह है—

अब तो हरि नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो वैरागी।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कहँ छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधै जाको पाँव।
स्याम किसोर भयो नव गोरा, चैतन्य जाको नाँव॥
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी मीराँ, रसना कृष्ण बसै॥*

इस पद में चैतन्य का नाम अवश्य आया है और सम्भव है मीराँ ने व्रजवास में इस प्रकार के भाव व्यक्त भी किये हों, पर हम 'गौर कृष्ण की दासी' को मीराँ मानने को तत्पर नहीं। मीराँ का जो प्रत्युत्तर जीव गुसाईं को था वह कितना सटीक था। तब किसी को पुरुष न माननेवाली निडर मीराँ को क्या पड़ी होगी कि इससे अधिक ज्ञान प्राप्त करती? और क्या जीव गुसाईं ने ऐसी मीराँ को दीक्षा देने का साहस भी किया होगा? यह धारणा नितान्त भ्रामक है, क्योंकि सब कुछ आधार तो उपर्युक्त पद है, जो स्वयं अशुद्ध है। पद की अन्तिम पंक्ति का अन्य पाठ है—

दास भक्त की दासी मीराँ रसना कृष्ण बसे।×

---

* मीराँ, सहजो, दया पद संग्रह—पृ० ६ संपादक, श्रीवियोगी हरि।

× संगीत राग कल्पद्रुम (भाग २, पृ० ३०)

मीराँ को इन गुरु की दासी सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र प्रमाणों की आवश्यकता है।

अब हमें मीराँ की भक्ति पर विचार करना चाहिए। मीराँ की जीवनी से ज्ञात होता है कि वह कभी किसी गुरु या सम्प्रदाय के आश्रय में नहीं रही। सभी मतों के सम्पर्क में वह आती रही। इसलिए मीराँ की भक्ति को किसी सम्प्रदाय विशेष की कहना कठिन है।

प्रेम-साधना

मीराँ वैष्णव थी, इतना तो सभी मानते हैं। वह गोपी-प्रेम को कलियुग में प्रकट कर गई, यह नाभादास तक ने माना है। मीराँ के पदों में राधा और कृष्ण के संयोग और वियोग का वर्णन नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि साधना में राधा का गोपियों से प्राधान्य नहीं है। राधा और गोपी एक ही स्तर पर हैं। तभी तो मीराँ अपने पदों में 'भक्ति निसान वजाय के' प्रकट करती है कि मैं 'साँवलिये' की पत्नी हूँ। इस साधना में राधा और गोपी परकीया हैं। इस हेतु यह 'मध्व चैतन्य' की माधुर्य भाव की भक्ति से मिलती-जुलती है। मीराँ अपने आपको पूर्व जन्म की गोपी कहती है और कान्तभाव से गिरधर नागर को भजती है। अपने पदों में वह सम्बोधन भी करती है तो 'पिय' (कृष्ण) को या 'आली', 'सखी', 'सहेली' आदि को। वह पुरुष तो केवल कृष्ण को ही समझती है। इन सब लक्षणों से हमने मीराँ को 'मध्व चैतन्य' धारा के अंतर्गत माना है। हाँ, सम्भव है मीराँ के आरम्भिक पद राजस्थान में साधुसंतों की मंडली में बने हों और अनायास ही उन पर संत (निर्गुण एकेश्वरवादी) मत का रंग चढ़ गया हो। इस प्रकार के पदों में क्षेपकों की भरमार है। पर दुःख है मीराँ में रहस्य-वाद खोजनेवाले इन सभी पदों को प्रामाणिक मान कर सब कुछ

लिखते चले जा रहे हैं।

मीराँ की साधना में एक और विलक्षणता है, जिससे सम्पूर्ण साहित्य में वह अपने से सिद्धान्तों वाली एक ही है। मीराँ का संयोग या वियोग केवल एकांगी ही नहीं, सीमित भी है। वह स्वयं ही अपने कृष्ण को भजती है और उन्हीं से अपनी हृदय-व्यथा प्रकट करती है। आत्मनिवेदन में गहराई अवश्य है, पर उसमें व्यापकता नहीं है। मीराँ के विरह में सारी प्रकृति नहीं रोती है। मीराँ में एकाकी साधना की चाह है। मीराँ में रूपासक्ति अधिक नहीं है वरन् सर्वस्व समर्पण की प्रबल इच्छा है। मीराँ मोक्ष नहीं चाहती। अपने किये हुए पर क्षमा माँगने की उसे सुध-बुध भी अधिक नहीं है वरन् वह पतिव्रता की भाँति अपने पति का स्मरण करती है।

मीराँ का लज्जालु हृदय संयोग शृंगार का खुलकर वर्णन नहीं करता है। वह स्त्री ठहरी। फिर अपने पिव की रति का वर्णन वह अन्य को क्यों सुनावे! वह प्रगल्भा नहीं, वरन् मुग्धा है। मीराँ का चरित्र और चरित इतने निजी हैं कि व्यक्तित्व के बल पर, वह अपने पदों में सत्य की सृष्टि कर देती है। मीराँ की यह व्यक्तिगत भावना अत्यन्त स्वतन्त्र है। मीराँ की पदावली में सहज सौन्दर्य है, भोलापन है, नारी सुलभ मंगल-प्रद कमनीयता है और इन सभी गुणों का कारण है मीराँ का गोपी-सदृश जीवन। मीराँ की प्रेम-साधना को नाभादास ने ठीक ही आंका है—"सदृसि गोपिन प्रेम प्रकट, कलजुगहि दिखायो।"

मीराँ की पदावली में मीराँ का रूप कथा-गायक या काव्य-कला में निपुण कवियित्री-सा नहीं है। उसमें तो भाव

वर्ण्य-विषय

पक्ष प्रबल है और वह भाव पक्ष है—हृदय के उद्गारों का छंदोबद्ध रूप। वास्तव में काव्य की

आत्मा तो मीराँ की पदावली में सर्वत्र है, पर वर्ण्य-विषय क्या है का लेखा देना कठिन है। मीराँ-पदावली में जो है वह है मीराँ की भक्ति और हम इस प्रेम-साधना का परिचय ऊपर दे चुके हैं। यहाँ पर पदावली का वर्गीकरण किन किन भागों में हो सकता है आदि पर लिखेंगे।

मीराँ ने विनय संबंधी पदों में सर्वत्र हरि के रूप और उसको हृदय में बसाने की इच्छा प्रकट की है। रूप-वर्णन में बहुत स्थानों पर शब्द-चित्रों की सृष्टि हो गई है। पद के पढ़ते पढ़ते एक मोहक मूर्ति कल्पना में घर कर लेती है। इस प्रकार के वर्णन में अलंकारों की भरमार नहीं है। पदों की शब्दावली बहुत सरल और सहज प्रवाह लिये होती है। जैसे, मीराँ का प्रसिद्ध पद है—'बसो मेरे नैनन में नँदलाल।' रूप के लोभी नेत्रों और चित्त की दशा का संकेत मीराँ द्वारा कल्पित नहीं है; इस कारण उसमें कृत्रिमता नहीं है वरन् स्वाभाविकता है। इस तथ्य को पढ़कर भावुक विभोर हो जाता है। मीराँ अपनी लगन, साधना, इच्छा, संकल्प, लक्ष्य आदि का निर्देश बार बार करती है और वह सब एक ही होता है—'जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।' इसी पति को रिझाने के लिए वह कहती है—'गिरधर आगे नाचूँगी।' वह अपने भवन में खड़ी पंथ निहारती है। लोक लाज छोड़ देती है। वह तो यहाँ तक कह देती है—'जिह जिह विध रीझै हरी, सोई विधि कीजै हो।' अविनाशी प्रियतम को पाने के लिए वह अपनी टेक पर अड़ जाती है। उसका पथ भी निश्चित है। उसका तप तो 'हरि रंग' के लग जाते ही आरम्भ हो जाता है।

मीराँ के बहुत से पदों में स्वजनों से मतभेद के कथानक हैं, पर मीराँ के लिए ऐसे पद रचना असम्भव प्रतीत होता है। इस

हेतु इन्हें क्षेपक ही मानना चाहिए। कुल-नारी मीराँ स्वजनों का विरोध अकारण ही नहीं कर सकी होगी। उसको जब रोका गया होगा तब वह आज्ञा को तोड़ती रही होगी, पर इस प्रकार के उच्छृङ्खल शब्द वह कभी बोल न सकी होगी। मीराँ पर जिन जिन विपत्तियों के पहाड़ टूटे वे सब पदों में लिखित हैं, पर बहुत ही गर्व और अहंकार सहित। इस प्रकार की स्पष्टोक्तियाँ किसी भक्त-हृदय की न होकर अन्यों की सूझ हैं।*

वियोग-वर्णन में मीराँ अपनी व्यथा प्रकट करती है। उसके पति कृष्ण के लिए आकुल कोई अन्य गोपिका वर्णन ही नहीं की गई है। इससे सिद्ध होता है कि उसका विरह नितांत ही निजी है। मीराँ पतिव्रता गोपी के रूप में हमारे सम्मुख आती है। उसके विरह में प्रकृति नहीं रोती है। विरह व्यापक रूप में वर्णित भी नहीं है। केवल कहीं-कहीं विरहिणी 'पापी पपीहे' को कोस देती है।

मीराँ ने कृपालु कृष्ण से प्रार्थना करते समय उनके दीन-बंधुत्व को भी स्मरण किया है। वह पौराणिक भक्तों के अतिरिक्त नामदेव, कबीर, धना, पीपा आदि पूर्ववर्ती सन्तों को भी नहीं भूलती है। मीराँ के पदों में प्रभु-मिलन का विश्वास है। वह कठोर प्रतीक्षा भी करती है। अन्त में मिलन होता है। वह आत्म-समर्पण कर देती है। पिय-मिलन की बेला में वह शकुन-वाहक काग और ज्योतिषी को नहीं भूलती है। इन उक्तियों से पद के वर्ण्य-विषय का सौन्दर्य खिल उठता है।

व्रजभूमि के सम्पर्क में आकर मीराँ ने कृष्ण की लीलाओं को भी गाया है। एकाध पदों में वृन्दावन और गोकुल ग्राम वासी प्रजा की प्रशंसा है। बाल-लीला के अतिरिक्त कुछ पद होरी लीला, पनघट-लीला, वंशी, गोचारण, दान आदि पर भी हैं। इन पदों में भावों की कुछ विशेष मौलिकता नहीं है और न उक्ति-सौन्दर्य

ही है। इन पदों में कुछ भी महत्व रखता है तो इन पदों का सरल होना। इस सरलता से भाषा में स्पष्टता और प्रवाह आ गया है। कुछ पद उपदेश आदि से युक्त भी हैं। जग को मार्ग सुझाने का भार मीराँ ने उठाया ही नहीं था। सम्भव है ये पद मीराँ ने सन्त-मंडली के लिए बनाकर गाये हों, पर इन पदों में मीराँ की आत्मा नहीं रमी है।

मीराँ के पदों में यदि चमत्कार खोजा जाय तो उचित नहीं होगा। मीराँ-पदावली में भाव पक्ष प्रधान है और कला पक्ष न्यून है। वास्तव में भक्त मीराँ ने काव्य की

अलंकार

बारीकियों पर ध्यान नहीं दिया है। वह तो अपने भाव प्रकट करती रही और उनमें यत्र-तत्र अलंकारों को भी स्थान मिल गया। यह अलंकार-विधान बहुत ही सरल और स्वाभाविक है। रूपक और उपमा अलंकारों के पश्चात् अनुप्रास का प्रयोग मीराँ-पदावली में अधिक हुआ है।

पदावली का अध्ययन, संपादन और संशोधन करते समय हमारी पहली कठिनाई भाषा की समस्या को सुलझाने की है। बात यह है कि मीराँ के पदों का रचना-

भाषा

काल भी भिन्न-भिन्न है और देश भी। देश-परिवर्तन के साथ भाषा भी रूप बदलती रहती है। यह सिद्धान्त परिवर्तनशील भी है। जैसे, किसी कारण आवेश आ जाय तो कवि अपनी भाषा में ही रचना करेगा। भाषा-फेर के अन्य कारणों में से लिपि और लहिया भी हैं। अन्य लिपियों में जाकर शब्द कुछ रङ्ग बदल लेते हैं तो कुछ शब्द लहिया (लेखक या प्रतिलिपिकार) की कृपा से अपना रूप ही बदल लेते हैं। गेय पदों (मुक्तक छंदों) की भाषा पर कुठाराघात संगीत के खिलाड़ी भी कर देते हैं। मूल पद किस राग में था इसका

पता न होने पर जब पद को भिन्न राग में गाने की चेष्टा की जाती है तब ताल के अनुसार मात्राओं को बिठाने में शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा जाता है और इस प्रकार पद की भाषा बदल जाती है। अंतिम प्रहार कभी-कभी पद के सम्पादकों द्वारा भी हो जाता है। संपादकों ने ऐसा किया भी है। मीराँ के पदों का संपादक यदि मान ले कि मीराँ का काव्य तो राजस्थान का है और वह लगे राजस्थानी भाषा के व्याकरण के अनुसार उन पदों का संपादन करने, तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। मीराँ के ब्रज में रचे पद जब ब्रज लीला को अपना विषय बनाते हैं तब शुद्ध ब्रजभाषा में होते हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन ब्रजभाषा के रूप का व्याकरण निर्धारित करना पड़ेगा। हाँ, तो संपादन की भाषा विषयक समस्या के अतिरिक्त छंद और राग पर भी ध्यान देना पड़ता है। इस हेतु संपादन के व्यवस्थित रूप और उसकी प्रणाली पर विचार न करके, हम मीराँ की भाषा पर केवल इतना ही लिखना चाहेंगे कि वह 'पिंगल' है। पिंगल से हमारा तात्पर्य ब्रजभाषा के उस रूप से है जो मध्यकाल में राज-स्थान की काव्यभाषा (विशेषकर भक्ति संबंधी पदों) का रहा है।

पदावली के शुद्ध पाठ का निश्चय होने के प्रथम उसके आधारभूत छंद को कहना कठिन है। संगीत के सुविधानुसार पदों के छंदों की मात्रायें घटती-बढ़ती रहीं और फलस्वरूप

छंद

कोई भी पद गति भंग आदि दोषों से मुक्त न रहा। तो भी पदों का स्वरूप पहचाना जा सकता है। मीरां-पदावली में सार छंद (मात्रिक) का प्राधान्य है। सरसी छंद (मात्रिक) का भी बाहुल्य है। इनके अतिरिक्त उपमान, शोभन आदि मात्रिक छंदों का भी प्रयोग हुआ है। वर्णिक छंदों का प्रयोग मीरां द्वारा हुआ कि नहीं—यह संदिग्ध है।

पद-लहरी

[१]

मन परसि[1] हरि के चरण।

सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध[2] ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरणं।
जिण चरण ध्रुव अटल[3] कीने, राखि अपनी शरण।
जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो[4], नख-सिख सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरण[5]।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो; गोप लीला करण।
जिण चरण गोवरधन धार्यो, इन्द्र को ग्रब[6] हरण।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम[7] तारण तरण[8] ॥

---

१ पद—१. स्पर्श कर, वंदना कर २. तीन प्रकार के ताप (दुःख)—(१) आध्यात्मिक (मानसिक और शारीरिक) (२) आधिदैविक (देवताओं द्वारा होनेवाले दुःख, जैसे—अति वृष्टि आदि) और (३) आधिभौतिक (जीवों द्वारा होनेवाले कष्ट, जैसे—टिड्डीदल आदि) ३. आकाश में (ध्रुव को) अचल बना कर स्थापित किया। ४. आलिंगन किया (अर्थात् नापा) ५. अहिल्या ६. गर्व, अहंकार ७. अगम्य, दुस्तर (भवसागर) ८. तरणि, नौका।

(२)

चरण रज महिमा मैं जानी।
एही चरण से गंगा प्रकटी, भगीरथ कुल तारी।
एही चरण से विप्र सुदामा, हरि कंचन-धाम दीनी।
एही चरण से अहल्या उद्धारी, गौतम की पटरानी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, एही चरण कमल में लपटानी॥
(अ. प्र.)*

[३]

बसो मोरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति[1] उर बैजंती माल[2]॥
छुद्र घंटिका[3] कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल[4]।
मीराँ प्रभु सन्तन सुखदाई भगत बछल[5] गोपाल॥

*अ.प्र.—अप्रकाशित पद (यह संकेत उन पदों के संबंध में है जो प्रथम बार मुद्रित होकर प्रकट हो रहे हैं। ऐसे पद अधिकांश में ह० लि० प्रतियों या अन्य स्थलों से एकत्र किये गये हैं।)

३ पद—१. शोभित है २. भगवान् विष्णु के द्वारा धारण की जानेवाली माला (वैजंती [illegible] के फूल गले और घुटनों में झूलते हैं)। ३. क्षुद्र घंटिका करधनी ४. मधुर ५. भक्तवत्सल, जिनको भक्त प्यारे हैं।

[४]

हरि मोरे जीवन प्रान अधार।
और आसिरो[१] नाँही तुम बिन तीनूँ लोक मँझार[२]।
आप बिना मोहिं कछु न सुहावै निरख्यौ सब संसार।
मीराँ कहै मैं दासी रावरी दीज्यौ मती[३] बिसार[४]।

[५]

प्रभुजी मैं अरज करूँ छूँ मेरो बेड़ो[१] लगाज्यो पार।
इन भव में मैं दुःख बहु पायो, संसा[२] सोक[३] निवार[४]।
अष्ट करम[५] की तलब[६] लगी है दूर करो दुःख भार।
यो संसार सब बह्यो[७] जात है लख चौरासी[८] की धार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवागमन[९] निवार[१०]॥
(अ. प्र.)

---

४ पद—१. आश्रय, शरण २. मध्य, में ३. मत, नहीं, ४. विस्मृत होना भूल जाना।

५ पद—१. नौका, जहाज, २. संशय, संदेह ३. शोक ४. दूर करो ५. सांसारिक कर्मों का ताँता ६. बोझा ७. लिप्त होकर अपना समय बिता रहा है ८. ८४ लाख योनियों में जन्म लेने का चक्र ९. जन्म-मरण १०. दूर करो, रोको।

[६]

मने[1] चाकर[2] राखौजी, मने चाकर राखोजी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ[3], नित उठ दरसण पासूँ[4]।
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूँ[5]।
चाकरी[6] में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची[7]।
भाव भगति जागीरी[8] पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी[9]।
मोर मुगट पीताम्बर सोहे, गल वैजन्ती माला।
बिन्द्रावन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला।
हरे हरे नित बाग[10] बनाऊँ, बिच बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुंभी सारी[11]।
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधु आया, बिन्द्रावन के बासी।
मीराँ के प्रभु गहिर[12] गँभीरा[13] सदा रहो जी धीरा[14]।
आधी रात प्रभु दरसन दैहैं, प्रेम-नदी के तीरा।

[७]

तनक हरि चितवौ जी मोर ओर।
हम चितवत तुम चितवत नाहीं दिल के बड़े कठोर।
मेरे आसा चितवनि तुमरी और न दूजी दोर[१]।
तुमसे हमकूँ कब रे मिलोगे हमसी[२] लाख करोर।
ऊभी ठाढीं[३] अरज करत हूँ अरज करत भयो भोर।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी देस्यूँ[४] प्राण अकोर[५]॥

[८]

थे तो पलक उघाड़ो[१] दीना नाथ,
मैं हाजिर नाजिर[२] कब की खड़ी ॥टेक॥
साजनियाँ[३] दुसमण होय बैठ्या[४], सबने[५] लगूँ कड़ी[६]।
तुम बिन साजन कोई नहीं है, डिगी[७] नाव मेरी समँद[८] अड़ी।
दिन नहिं चैन रैण नहिं निंदरा, सूखूँ[९] खड़ी खड़ी[१०]।
बाण बिरह का लग्या हिये में, भूलूँ न एक घड़ी।
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी।
कहा बोझ मीराँ में कहिये, सौ[१२] पर एक घड़ी[१३]॥

---

७ पद—१. दौड़, स्थान, स्थल, २. हमारे जैसी ३. सेवा में खड़ी दूँगी ५. न्यौछावर कर।

८ पद—१. खोलो २. सेवा में, नेत्रों के सम्मुख ३. स्वजन, सगे-[illegible]धी लोग ४. हो गये ५. सभी को ६. अप्रिय, बुरी, कड़वी ७. एक [illegible]र डिगी, ढुलकी, हुई ८. रुककर अटकी है ९. जर्जरित (विनष्ट) [illegible]ना १०. योंही (बिना कुछ किए) ११. प्रभु मिलन की आशा में विर[illegible] [illegible]. सौ (तोले) का एक सेर होता है (अर्थात् जब आप इतना बोझ [illegible]ा लेते हैं तो मेरा बोझ तो नगण्य है) १३. चार या पाँच सेर का [illegible] तोल।

[९]

हरि बिन कूण[1] गति[2] मेरी ।
तुम मेरे प्रतिपाल[3] कहिये[4] मैं रावरी[5] चेरी[6] ।
आदि अंत निज नाँव[7] तेरो हीया में फेरी[8] ।
बेरि बेरि[9] पुकारि कहूँ प्रभु आरति[10] है तेरी ।
यौ संसार बिकार[11] सागर बीच में घेरी[12] ।
नाव फाटी[13] प्रभु पालि बाँधो, बूड़त[14] है बेरी[15] ।
बिरहणी पिव की बाट जोवै राखिल्यौ नेरी[16] ।
दासि मीराँ राम रटत है मैं सरणि[17] हूँ तेरी ।

[१०]

थे म्हारी सुध ज्यूँ जाणूँ[1] ज्यूँ लीज्यो ।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, बेगो[2] ही दरसण दीज्यो ।
मैं मंदभागण, करम अभागण, औगण[3] चित मत दीज्यो ।
बिरह लगी पल छिन न लगत है यो तन यूँ ही छीज्यौ[4] ।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी देस्यौं प्राण पतीज्यौ[5] ॥
(अ. प्र.)

---

९ पद—१. कौन २. दशा ३. प्रतिपालक, रक्षक ४. कहे जाते हो ५. आपकी ६. दासी ७. नाम ८. फेरती हूँ, जपती हूँ ९. बार बार १०. आर्ति (विरह-पीड़ा) ११. अवगुण १२. घिर गई १३. टूटी फूटी नौका १४. डूबती है १५. नौका १६. निकट १७. शरण ।

१० पद—१. जैसे हो वैसे २. शीघ्र ३. अवगुण ४. दुःख, दुबला-पतला, होना ५. विश्वास होना ।

भज मन चरण कँवल अविनासी ।
जेताइ दीसे[1] धरण[2] गगन विच, तेताई[3] सब उठ जासी[4]।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत[5] कासी ।
इस देही का गरव न करना, माटी में मिल जासी ।
यो संसार चहर[6] की बाजी[7] साँझ पड्याँ[8] उठ जासी ।
कहा भयो है भगवा[9] पहरयाँ, घर तज भये संन्यासी ।
जोगी होय जुगति[10] नहिं जाणी, उलटि जनम[11] फिर आसी ।
अरज[12] करों अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी[13]॥

---

११ पद—१. जितने भी दिखते हैं २. धरणी पृथ्वी ३. उतने ही ४. नष्ट हो जावँगे ५. करपत्र (आरा) से शरीर चिरवाने से सदेह स्वर्ग मिलता है, यह धारणा भक्तों में थी । यह करवत काशी में ली जाती थी । ६. बया (पक्षी) ७. खेल ८. पड़ने पर ९. गेरुआ वस्त्र १०. युक्ति (प्रभु प्राप्ति की) ११. मरकर फिर जन्म होगा १२. प्रार्थना १३. यम क भय (जन्म-मरण या आवागमन) ।

[१२]

नहिं ऐसो जनम बारंबार।
का जानूं कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार[1]।
बढ़त छिन छिन, घटत पल पल, जात[2] न लागे बार[3]।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौसागर अति जोर[4] कहिये अनंत[5] ऊँडी[6] धार।
राम नाम का बांध बेड़ा उतर परले[7] पार।
ज्ञान चोसर[8] मंडी[9] चोहटे[10] सुरत[11] पासा[12] सार[13]।
या दुनिया में रची बाजी जीत भावै[14] हार।
साधु संत महंत ज्ञानी चलत[15] करत पुकार[16]।
दास मीरां लाल गिरधर जीवणा दिन च्यार[17]॥

[१३]

करम गत[1] टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचंद से राजा, सो तो नीच घर नीर भरे।
पांच पांडु अरु सती द्रौपदी, हिमाले[2] गरे।
जग्य[3] कियो बलि लेण इन्द्रासण[4], सो पाताल धरे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर बिख[5] से अम्रित करे॥

[१४]

लगी मोहि राम खुमारी[1] हो।
रमझम बरसै मेहड़ा[2] भीजै तन सारी हो।
चहुँ दिस चमकै दामणी[3] गरजै घन भारी हो॥
सतगुर भेद[4] बताइया खोली भरम[5] किंवारी[6] हो।
सब घट[7] दीसै आतमा सबही सूँ[8] न्यारी हो॥
दीपग जोऊँ[9] ग्यान का चढ़ूँ अगम[10] अटारी[11] हो।
मीराँ दासी राम की इमरत बलिहारी हो॥

[१५]

मेरो मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत[1] जु पुराने, नामहि लेत फटै[2] रे॥
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै[3] रे।
मीराँ कहे प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै[4] रे॥

---

१४ पद—१.नशा उतरते समय की चिंतारहित हल्की मस्ती भरी गा २.वर्षा ३.दामिनी, बिजली, ४. रहस्य (ईश्वर प्राप्ति की विधि) भ्रम, अज्ञान ६. किवाड़, कपाट, द्वार ७. शरीर (हृदय में) से ६.जलाकर १०. अगम्य, दुर्गम ११.भवन का सबसे ऊपरी भाग, ाँ समाधिस्थ होने से अभिप्राय है।

१५ पद—१.ऋण-पत्र २. नष्ट होना ३. मना करे ४. एक भाव ाना।

[१६]

मैंने राम रतन धन पायो।
वसत[1] अमोलक[2] दी मेरे सतगुर करि किरपा अपणायो[3]॥
जनम जनम की पूँजी[4] पाई जग में सबै खोवायो[5]।
खरचै नहिं कोइ चोर ना लेवै दिन दिन वधत सवायो[6]॥
सत की नाव खेवटिया सतगुर भवसागर तरि आयो[7]।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि[8] जस[9] गायो॥

[१७]

मोहि लागी लगन[1] गुरु चरनन की।
चरन बिना कछुवै नहि भावै, जग माया सब सपनन की॥
भव-सागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहि तरनन[2] की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर आस वही गुरु सरनन की॥

[१८]

फागुन के दिन चार[1] रे, होरी खेल मना रे।
बिनि करताल पखावज बाजै अणहद[2] की झणकार रे॥
बिनि सुर[3] राग छतीसूँ गावै रोम रोम रँग सार[4] रे।
सील सँतोख[5] की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे॥
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं लोक लाज सब डार रे॥
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल बलिहार रे॥

[१९]

राम मोरी बाँहड़ली जी गहो[1]।
या भवसागर मँझधार में थे[2] ही निभावण[3] हो॥
म्हाँमे ओगण[4] घणा[5] छै[6] हो[7] प्रभुजी थे ही सही तो सहो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी लाज बरद[8] की बहो[9]॥

[२०]

प्रभु से मिलना कैसे होय।
पाँच पहर धँधे में बीते, तीन प्रहर रहे है सोय।
मानुष जनम अमोलख पायो सो तैं सबही डार्‌यो खोय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर भजीये होनी होय सो अबही होय॥
(अ. प्र.)

---

१८ पद—१. थोड़े दिन २. अनहद नाद (समाधि में सुनाई पड़ने वाली अस्फुट ध्वनि) ३. स्वर ४. उत्तम ५. शील और संतोष।

१९ पद—१. बाँह धर (पकड़) कर २. आप ३. निभाने वाले ४. मेरे में अवगुण ५. अधिक ६. है ७. हे ८. बिरद ९. रखो।

[२१]

लेताँ लेता[1] राम नाम रे, लोकड़ियाँ[2] तो लाजाँ[3] मरे छै।
हरि मंदिर जाता पाँवलिया[4] रे दूखे[5], फिरि आवे सारो गाम रे[6]।
झगड़ो थाय[7] त्याँ दौड़ी ने जाय रे, मूकी[8] ने घर ना काम रे॥
भाँड भवैया गणिका त्रित करताँ, वेसी[9] रहे चारे जाम[10] रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम[11] रे॥

[२२]

हमने सुणी छै हरि अधम उधारण[1]।
अधम उधारण सब जग तारण। हमने०
गज की अरजि[2] गरजि उठि ध्यायो संकट पड्यौ तव कष्ट निवारण॥
द्रोपति सुता[3] को चीर वधायो, दूसासन को मान पद मारण।
प्रह्लाद की प्रतंग्या[4] राखी हरणाकुस नख उद्र विद्रारण[5]॥
रिख पतनी[6] पर किरपा कीन्ही विप्र सदामाँ की विपति विदारण।
मीराँ के प्रभु मो बंदी[7] परि एती[8] अवेरि[9] भई किण[10] कारण॥

---

२१ पद—१ लेने से २. संसारी लोग ३. लज्जित ४. पैर ५. दर्द करते हैं ६. सारे गाँव में फिर आते हैं ७. हो जाय ८. रखकर के (छोड़कर) ९. बैठे रह जाते हैं १०. याम, प्रहर ११. लगा हुआ।

२२ पद १—१. उद्धार करने वाले २. प्रार्थना ३. द्रुपद-सुता, द्रोपदी ४. प्रतिज्ञा ५. हिरण्यकश्यप के उदर को नख से विदारण करने—फाड़ने-वाले ६. ऋषि-पत्नी (अहल्या) ७. बाँदी, दासी ८. इतनी ९. देर १०. किस।

[२३]

हरी तुम हरो जन की भीर।
द्रोपती की लाज राखी तुरत बाढ्यो चीर॥
भगत[1] कारण रूप नरहरि[2] धर्यो आप शरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्हो धर्यौ नाँहिन धीर॥
बूड़तौ गजराज राख्यौ कियौ बाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर चरण कँवल पै सीर[3]॥

[२४]

स्वामी सब संसार के हो साँचे श्री भगवान।
स्थावर जंगम पावक पाणी धरती बीज समान॥
सब में महिमा थारी[1] देखी कुदरत के करवान[2]।
विप्र सुदामा को दालद[3] खोये बाले[4] की पहचान॥
दो मुट्ठी तंदुल[5] की चाखी दीन्हों द्रव्य महान।
भारत[6] में अर्जुन के आगे आप भयो रथवान॥
अर्जुन कुल का लोग निहार्यां छुट गयो तीर कमान।
ना कोई मारे न कोई मरतो, तेरो ओ अग्यान॥
चेतन जीव तो अजर अमर है, यो गीता रो ग्यान[7]।
मेरे पर प्रभु किरपा कीजो, बाँदी[8] अपणी जान।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल में ध्यान॥
(अ. प्र.)

२३पद—१. प्रह्लाद २. नृसिंहावतार ३. सिर मस्तक।

२४ पद—१. आपकी २. प्रकृति के हाथों से सब करवाने वाले ३. दरिद्रता ४. लड़कपन ५. चावल ६. महाभारत के युद्ध में ७. कृष्ण की गीता का ज्ञान ८. सेविका।

[२५]

सुण लीजो विनती मोरी, मैं सरण गही प्रभु तोरी।
तुम (तो)पतित अनेक उधारे, भवसागर से तारे॥
मैं सब का तो नाम न जानूँ, कोई कोई नाम उचारे।
अम्बरीप[1] सुदामा नामा[2] तुम पहुँचाये निज धामा॥
ध्रुव जो पाँच वर्ष के बालक,तुम दरस दिये घनस्यामा।
धना भगत का खेत जमाया, कबीर का बैल चराया॥
सवरी का जूठा फल खाया, तुम काज किये मन भाया।
सदना[3] और सेना नाई को, तुम कीन्हा अपनाई॥
करमा[4] की खीचड़ी खाई, तुम गणीका[5] पार लगाई।
मीराँ प्रभु तुमरे रँग राती, या जानत सब दुनियाई॥
(अ. प्र.)

[२६]

हरि, म्हाँरी सुणज्यौ[1] अरज महाराज।
मैं अवला, वल नाँहि, गोसाईं, राखो अब कै लाज।
रावरी होइ कणी रै[2] जाऊँ है हरि हिवड़ा[3] रो साज[4]॥
हय[5]को वपु[6]धरि दैत सँवार्यो,सार्यो[7] देवन को काज।
मीराँ के प्रभु और न कोई, तुम मेरे सिरताज॥
(अ. प्र.)

---

२५ पद—१.एक भक्त राजा का नाम २. नामदेव ३. सदना कसाई ४'करमाबाई ५. जीवन्ती वेश्या।

२६ पद—१. सुन लेना २. किस के (पास) ३. हृदय का ४. सब कुछ शृंगार ५. अश्व, हयग्रीव अवतार ६. शरीर ७. पूर्ण (सफल) किया।

[२७]

नैया मोरी हरि तुमही खिवैया तुमरी कृपा ते पार लगैया।
गहरी नदीया नाव पुरानी पार करो बलभद्रजू के भैया॥
अजामिल,गज,गणिका,तारी शिवरी,अहल्या,द्रोपदी लाज रखैया।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर वार वार तुमरे वल गइया॥
(अ. प्र.)

[२८]

राम गरीव-निवाज[1] मेरे सिर राम गरीव-निवाज।
कंचन कलस सदामाँ कूँ दीनो हींडत है गजराज।
रावण के दस मसतग छेदे दीयौ भभीखण[2] राज॥
द्रोपति सती को चीर वधायो अपणे जन[3] के काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी कुल की राखी लाज॥
(अ. प्र.)

[२९]

देखत राम[1] हँसे सदामा कूँ देखत राम हँसे।
फाटी तो फूलड़ियाँ[2] पाँव उभाणे[3] चलतें चरण घसे।
वालपणे का मिंत सदामाँ अव क्यूँ दूर वसे।
कहा भावज ने भेंट पठाई[4] ताँदुल तीन पसे[5]।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया[6] हीरा मोती लाल कसे[7]।
कित गई प्रभु मोरी गउअन वछिया,द्वारा विच्च हसती फसे[8]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी सरणे तोरे वसे।

---

२८ पद—१. गरीवों पर कृपा करने वाला २. विभीषण ३. भक्त।

२९ पद—१. कृष्ण (वलराम ?) २.जूतियाँ ३. नंगे पाँव ४.भेजी ५. मुट्ठी ६. कुटिया ७. जड़े हुए ८. अड़ जाते हैं।

[३०]

असा[1] प्रभु जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै[2] हिरदे धरि लीजै हो॥
आव सखी मुख देखिये नैणाँ रस पीजै हो।
जिह जिह विधि रीझै हरी सोई विधि कीजै हो॥
सुन्दर स्याम सुहावणा मुख देख्याँ जीजै[3] हो।
मीराँ के प्रभु रामजी बड भागण रीझै[4] हो॥

[३१]

आली रे मेरे नैणाँ बाण[1] पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन मूर जड़ी[2]।
मीराँ गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी॥

[३२]

माई मेरे नैनन बाँन परो री।
जा दिन नैना स्याम न देखों बिसरत नाहीं घरी री।
चित बस गई साँवरी सूरत उर तें नाहीं टरो री।
मीराँ हरि के हाथ बिकानी सरवस[1] दे निवड़ी[2] री॥
(अ. प्र.)

---

३० पद—१. ऐसे २. न्योछावर ३. जीवित रहना ४. रीझना, मोहित या मुग्ध होना, आनन्दित होना।

३१ पद—१. बान, टेव, स्वभाव २. जीवन को रखने वाली मूल (मुख्य) जड़ी है।

३२ पद—१. सब कुछ २. निपट गई, छुटकारा पाकर समाप्त किया।

[३३]

माई मोरे नयन बसे रघुवीर।
कर सर चाप कुसुम सर लोचन, ठाडे भये मन धीर॥
ललित लवँगलता नागरलीला, जब पेखो[1] तव रणवीर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बरसत कंचन नीर॥ (अ. प्र.)

[३४]

जब तें मोहि जगन्नाथ दृष्टि परे माई।
अरुण खंभ गरुड खंभ सिन्ध पोर झाँई।
मंदिर की शोभा कछु वरणिहू न जाई॥
मंगला[1] को दरस देख आनन्द हो जाई।
जै जै श्री जगन्नाथ सहोदरा[2] बल भाई॥
थाल भोग लगने की बिरियाँ जब आई।
उखड़ा औ दूध भोग प्रभुजी ने खाई॥
महाप्रसाद भोग खात आरती सजाई।
अपने प्रभु नासिका पर मोतिन लटकाई॥
बीच में सुभद्रा सोहै दाहिने बल[3] सोहाई।
बाँए हाथ लक्ष्मी छवि वरणिहू न जाई॥
मारकण्डेय वटेकृष्ण रोहिणी सुखदाई।
इन्द्रदमन[4] स्नान करत पाप सब नसाई॥
महोदधि[5] चक्रतीरथ गंगा गति पाई।
मीराँ के प्रभु जगन्नाथ चरणन बल जाई॥ (अ. प्र.)

---

३३ पद—१. देखो। ३४ पद—१. प्रातःकाल की आरती २. सुभद्रा, श्रीकृष्ण की बहिन ३. बलदेव ४. बाढ़ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुंड, ताल, वट या पीपल तक पहुँचना, जो पर्व समझा जाता है। ५. उस समुद्र का नाम जिसके तट पर जगन्नाथपुरी है।

[३५]

या मोहन के मैं रूप लुभानी।
सुंदर वदन कमल दललोचन बाँकी चितवन मँद मुसकानी॥
जमना के नीरे तीरे धेन चरावै वंसी में गावै मीठी वानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ चरण कँवल मीराँ लपटानी॥

[३६]

अव तो हरि नाम लौ[1] लागी साधो।
सव जग के यह माखन चोरा नाम धरो वैरागी॥
कहाँ छोड़ो मोहन मुरली को कहाँ छोड़ी सव गोपी।
अव मूड़ मुड़ाय के धुरकट बाँध्यो माथे मोहन टोपी॥
मात यशोदा माखन कारण हाथे बाँध्यो दाम[2]।
नवल किशोरा भए नव गोरा चेतन[3] वाको नाम॥
पीताम्वर के भाव दिखावे कटि काछनी कसे।
दास, भक्त की दासी मीराँ रसना कृष्ण वसे॥
(अ. प्र.)

[३७]

म्हाँरे घर आवो, स्याम, गोठड़ी[1] कराइयै।
आनंद उछाव[2] करूँ तन मन भेंट धरूँ।
मैं तो हूँ तुम्हारी दासी, ताकूँ[3] तो चितारियै[4]।
गिगन गरजि आयौ, बदरा वरसि भायौ।
सारंग[5] सवद सुनि विहर्नी[6] पुकारियै।
घर आवो स्याम मेरे, मैं तो लागू पाँय तेरे।
मीराँ कूँ सरणि लीजै, वलि वलिहारियै॥ (अ. प्र.)

---

३६ पद—१. लगन, प्रेम २. रस्सी ३. गौर चैतन्य।

३७ पद—१. गोष्ठी (प्रीतिभोज) २. उत्सव ३. उसको ४. ध्यान में लीजिए ५. मोर ६. विरहिनी।

[३८]

कान्ह रसिया वृन्दावन वासी ।
यमुना के नीरे तीरे धेन चरावे मुरली वजावे मृदुलासी ॥
मोर मुकुट पीताम्वर सोहे श्रवण कुण्डल झलासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर विना मोल की दासी ॥ (अ. प्र.)

[३९]

हे मा वड़ी वड़ी अँखियन वारो
साँवरो मो तन हेरत हँसि के ।
भौंहे कमान वान वाके लोचन मारत हियरे कसि के ।
जतन[1]करो जन्तर[2]लिखो वाँधो औषध लाऊँ घसि के ॥
ज्यों तोको कछु और विथा[3] हो नाहिं न मेरो वसि के ।
कौन जतन करों मोरी आली चंदन लाऊँ घसि के ॥
जन्तर मन्तर जादू टोना माधुरी मूरत वसि के ।
साँवरी सूरत आन मिलावो ठाढ़ी रहूँ मैं हँसि के ॥
रेजा रेजा[4] भयो करेजा अंदर देखो धँसि के ।
मीराँ तो गिरिधर विन देखे कैसे रहे घर वसि के ॥ (अ. प्र.)

[४०]

थाँरी[1] छव[2]प्यारी लागे राज राधावर महाराज ।
रतन जटित सिर पेंच[3] कलंगी केशरिया सब साज ।
मोर मुकुट मकराकृत[4] कुंडल रसिकों रा सिरताज ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर म्हाँरे मिल गया व्रजराज ॥
(अ. प्र.)

३९पद—१. यत्न, उपाय २. जंत्र ३. पीड़ा ४. कण कण ।
४० पद—१. आपकी २. छवि, शोभा ३. पगड़ी ४. मछली के आकार का ।

[४१]

है री मा नंद को गुमानी म्हाँरे मनड़े[1] बस्यो।
गहे द्रुम डार कदम को ठाड़ो मृदु मुसकाय म्हाँरी ओर हँस्यो।
पीतांबर कट काछिनी काछे रतन जटित माथे मुकुट कस्यो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर निरख वदन म्हाँरो[2] मनडो फँस्यो॥
(अ. प्र.)

[४२]

सखी मेरो कानूड़ो[1] कलेजे की कोर[2]।
मोर मुगट पीतांबर सोहै कुंडल की झकझोर॥
विन्द्रावन की कुंज गलिन में नाचत नंदकिसोर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कँवल चितचोर॥

[४३]

गोपाल रंग राची मैं स्याम रंग राची[1]।
कहा भयो जल-विष[2] के ग्वाए तीनहु[3] ते मैं वाची[4]॥
तात मात लोग कुटुम्ब तिन कीनी उपहासी।
नन्द नन्दन गोपी ग्वाल तिनके आगे मैं नाची॥
और सकल छाड़ि के मैं भक्ति काछ[5] काची[6]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर मेरी जानत झूठी और साँची॥
(अ. प्र.)

४१ पद—१. मन में २. मेरा।

४२ पद—१. कान्ह, कृष्ण २. हृदय का टुकड़ा।

४३ पद—१. अनुरक्त हो गई हूँ (लीन हो गई हूँ) २. पानी में घुला हुआ विष ३. उनसे ४. बच गई ५. वेश ६. काछा, बनाया।

[४४]

स्याम बजावत बीणा री आली।
आठ मास कातिक नहाए दान पुण्य बहु कीना।
एरी दई तेरो कहा बिगड़ो छोटा कन्त मोहे दीना॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणन चित लींना।
अब तो आन पड़ी फंदे[२] बिच लोक लाज तज दीना॥
(अ. प्र.)

[४५]

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना[१]।
मटुकी[२] सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नँदजी के छोना[३]।
धि को नाम बिसरि गयो[४] प्यारी 'ले लेहु री कोई स्याम सलोना'॥
बृन्द्रावन की कुंज गलिन में आँख लगाइ गयो मन मोहना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सुंदरस्याम सुघर[५] रस लोना[६]॥

[४६]

आली[१] म्हाँने लागे वृन्दावन नीको[२]।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविंदजी को॥
निरमल नीर बहत जमना में भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप बिराजे मुगट धर्‌यो तुलसी को॥
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरली को।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको[३]॥

---

४४ पद—१. के २. संसार के चक्र में।

४५ पद—१. मोहकता जादू २. मटकी ३. कुँवर ४. भूल गया ५. सुन्दर ६. लावण्य रस वाला, सुंदर।

४६ पद—१. सखी २. मनोहर ३ निरर्थक गुणहीन।

[४७]

चालो मन गंगा जमना तीर।
गंगा जमना निरमल पाणी सीतल होत सरीर।
वंसी वजावत गावत कान्हो संग लियाँ वलवीर॥
मोर मुगट पीतांवर सोहै कुंडल झलकत हीर[1]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल पै सीर[2]॥

[४८]

वंशीवारे हो कान्हा मोरी रे गगरी उतार।
गगरी उतार मेरो तिलक सँभार[1]॥
यमुना के नीरे तीरे वरसीलो[2] मेह।
छोटे से कन्हैयाजी सों लागो म्हारो नेह॥
विन्द्रांवन में गऊएँ चरावे तोर लियो गरवा को हार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तोरे[3] गई वलिहार॥
(अ. प्र.)

[४९]

एरी तेरी कौन जाति पनिहारी।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी बीच मिले गिरिधारी॥
सुन्दर वदन नयनमृग[1] मानों विधाता[2] आप सम्वारी[3]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर तुम जीते हम हारी॥
(अ. प्र.)

---

४७ पद—१. कुण्डलों में हीरे चमकते हैं २. सिर, मस्तक।
४८ पद—१. ठीक से सँवार, कर दे २. रिमझिम वर्षा की झड़ी

[५०]

झटक्यो मेरो चीर मुरारी ।
गागर रंग सिरते[1] झटकी वेसर मुर गई सारी[2] ।
छुटी अलक कुंडल ते उरझी जड़[3] गई कोर किनारी ॥
मनमोहन रसिक नागर भए हो अनोखे खिलारी ।
मीराँ के प्रभु गिरधार नागर चरण कमल सिरधारी ॥
(अ.प्र.)

[५१]

कहाँ कहाँ जाऊँ तेरे साथ कन्हैया ।
विन्द्रावन की कुंज गलिन में गहे लीनों मेरो हाथ ॥
कबहूँ न दान[1] लियो मनमोहन सदा गोकुल आत जात ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर जनम जनम के नाथ ॥
(अ.प्र.)

[५२]

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो संग जुवत ब्रजनारी॥
चन्दन केसर छिरकत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुँ देत सबन पै डारी॥
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार चाँचर[1] राग तहँ दै दै कल करतारी॥
फाग जु खेलत रसिक साँवरो बाढ़्यो रस ब्रज भारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर मिले मन मोहन लाल बिहारी॥

[५३]

जागो बंसीवारे ललना जागो मोरे प्यारे।
रजनी बीती भोर भयो है घर घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है कँगना के झनकारे[1]॥
उठो लाल जी भोर भयो है सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल जय जय सबद उचारे॥
माखन रोटी हाथ में लीना गउवन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर शरण आयाँ को तारे॥

[५४]

नीको रह्यो यशोदा मैया तेरो लरको।
बछन[1] छोड़ाय, मेरी गउवाँ चुरवाय दीनी, और तारो[2] मेरो छींको।
दूध दही की कमोरी[3] फोरी, मथनिया माट फोरो गह्े[4] छींको।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हरि बिन सब जग फीको॥
(अ. म.)

---

५२ पद—१. होली की एक धमार (गीत)।
५३ पद—१. कंगनों के टकराने से उठी झनकार।
५४ पद—१. बछड़े २. तोड़ा ३. मटकी ४. पकड़ लिया।

[५५]

कुण बाँचै पाती, बिन प्रभु कुण बाँचै पाती ।[1]
कागद ले ऊधो जी आयो, कहाँ रह्या साथी ।
आवत जावत पाँव घिस्यारे[2] अँखियाँ भई राती ॥
कागद ले राधा वाँचण बैठी, भर आई छाती ।
नैण नीरज[3] में अंव[4] बहे रे, गंगा बही जाती ॥
पाना[5] ज्यूँ पीली पड़ी रे, अन्न नहिं खाती ।
हरि बिन जिवड़ों यूँ जले रे, ज्यूँ दीपक संग बाती ॥
मने भरोसे राम कौ रे[6] डूब तर्यो हाथी[7] ।
दास मीराँ लाल गिरधर, साँकड़ारो[8] साथी ॥

(५६)

अँखियाँ श्याम मिलन की प्यासी ।
आप तो जाय द्वारका छाये लोक करत मेरी हाँसी ।
आँब की डारी कोयल बोले बोलत सबद उदासी ॥
मेरे तो मन में ऐसी आवत है करवत लूँ जाय कासी ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल की दासी ॥

(अ. प्र.)

---

२२ पद—१. प्रभु बिना यह पत्र कौन पढ़े ? २. घिस गये ...मल ४. नीर, अश्रु ५. पान के पत्ते के समान ६. (का) है ७. ग्राह संकट में पड़े हुए हाथी को बचाया ८. विपत्ति (संकट) का ।

[५७]

साधो, मैं वैरागन[1] हर की[2] ।
भूषण वस्तर सबही हम त्यागे खान पान बिसरानो[3] ।
ए ब्रजवासी कहत बावरी मैं दासी गिरधर की ॥
ऊधा जो तुम जावो द्वारका विपत कहो गोपियन की ।
जैसे जल बिन मीन ज्यों तड़पे सो गत भई सखियन की ॥
पात पात वृन्दावन ढूँढ़्यो ढूँढ़ फिरी ब्रज घर की ।
आप तो जाय द्वारका छाये परि मोटी[4] विरहन की ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मैं दासी गिरधर की ॥
(अ. प्र.)

[५८]

होजी[1] हरि कित[2] गये नेह लगाय ।
नेह लगाय मेरो मन हर लीयो रस भरि टेर सुनाय ।
मेरे मन में ऐसी आवै मरूँ जहर विष खाय ।
छाड़ि गये बिसवासघात करि नेह केरी नाव चढ़ाय ।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे रहे मधुपुरी[3] छाय ॥

[५६]

सखी री लाज[1] वैरण[2] भई।
श्रीलाल गोपाल के सँग काहे नाही गई॥
कठिन क्रूर[3] अक्रूर[4] आयो साजि रथ कहँ नई।
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो हाथ मीजत[5] रही॥
कठिन छाती स्याम बिछुरत बिरह तें तन तई[6]।
दासी मीराँ लाल गिरधर बिखर[7] क्यों ना गई॥

[६०]

अपणे करम[1] कों वो[2] छै[3] दोस, काकूँ[4] दीजै रे ऊधो०।
सुणियो[5] मेरी बगड़ पड़ोसण गेल[6] चलत लागी चोट।
पहली[7] ग्यान मान नहिं कीन्हे,[8] मैं ममता[9] की बाँधी पोट[10]॥
मैं जाण्यूँ हरि नाहि तजेंगे करम लिख्यो भलि[11] पोच[12]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी परो[13] निवारोनी[14] सोच[15]॥

[६१]

गोविंद कबहुं मिलै पिया मेरा।
चरण कँवल कू हँसि-हँसि देखूँ राखूँ नेणाँ नेरा[1]।
निरखण कू मोहि चाव घणेरा[2], कब देखूँ मुख तेरा॥
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि तूँ मीत सवेरा।
मीराँ के प्रभु हरि गिरधर नागर, ताप तपन[3] बहुतेरा॥

---

५६ पद—१. लज्जा (संकोच) २ शत्रु ३. दुष्ट (कठोर हृदय का) ४. कृष्ण का चाचा, जो कंस के कहने पर कृष्ण को वृन्दावन से मथुरा ले गया था ५. पछताती रह गई ६. संतप्त हुई ७. खंड खंड होना।

६० पद—१. कर्म (किये हुए कर्मों का फल) २. वह ३. है ४. किसको ५. सुना ६. मार्ग ७. प्रथम ८ समझा बूझा ९. मोह (ममत्व) १०. गठरी ११. भला १२. बुरा १३. आन पड़ा हुआ १४. दूर करो १५. चिंता।

६१ पद—१. निकट २. अधिक ३. स्नेह पीड़ा आदि की ज्वाला या ताप।

[६२]

म्हांरा जनम मरण रा साथी, थांने[1] नहिं विसरूँ दिनराती।
तुम देख्याँ बिन कल[2] न पड़त है, जानत मारी छाती॥
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय रोय अखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूँठो झूँठा कुल रा न्याती[3]॥
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सूण लीज्यो मेरी वाती[4]।
यो मन मेरो बड़ो हरामी[5], ज्यूँ मदमातो हाथी॥
सतगुरु हाथ धर्यो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥

[६३]

आवो मनमोहनाजी जोऊ थांरी बाट।
खान पान मोहि नेक न भावै[1] नैण न लगे कपाट[2]॥
तुम आयां बिनि सुख नहिं मेरे दिल में बोहोत उचाट[3]।
मीरां कहै मैं भई रावरी छांडो नाँहि निराट[4]॥

[६४]

पियाजी म्हांने नैणां आगे[1] रहज्यो जी।
नैणां आगे रहज्यो, म्हांने भूल मत जाज्योजी।
भौ सागर में बही जात हूँ, बेग[2] म्हारी सुध लीज्योजी॥
राणाजी भेज्या विष का प्याला, सो इमरित कर दीज्योजी।
मीरांके प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्योजी॥

[६५]

मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होइ री।
आये मेरे सजना फिरि गये अँगना मैं अभागण रही सोइ री॥
फारूँगी चीर, करूँ गल कंथा[1] रहूँगी वैरागण होइ री।
चुरियाँ फोरूँ माँग बखेरूँ[2] कजरा मैं डारूँ धोइ री॥
निस बासर मोहि विरह सतावै कल न परत पल मोइ री।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी मिलि बिछुरो मति कोइ री॥

[६६]

बड़े घर ताली लागी[1] रे, म्हाराँ मन री उणारथ[2] भागी रे।
छीलरिये[3] म्हाँरो चित नहीं रे, डाबरिये[4] कुण[5] जाव।
गंगा जमना सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाइ मिलूँ दरियाव[6]॥
हाल्याँ मोल्या[7] सूँ काम नहीं रे, सीख[8] नहीं सिरदार[9]।
कामदारां[10] सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाव[11] करूँ दरबार[12]॥
काच कथीर[13] सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार।
सोना रूँपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरो हीराँ रो बौपार[14]॥
भाग हमारो जागियो रे, भयो समँद सूँ सीर[15]।
अम्रित प्याला छाँड़ि कै, कुण पीवै कड़वो नीर॥
पीपा कूँ प्रभु परचो[16] दीन्हो, दियो रे खजीना पूर[17]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी[18] मिल्या छै हजूर[19]॥

५ पद—१. गले की गूदड़ी २ मिटा कर।
६ पद—१. सम्बन्ध हुआ २. लालसा ३. छोटा तालाब ४. पानी से
भरा ५. कौन ६. सागर ७. नौकर-चाकर ८. परामर्श ९. राज्य के
अधिकारी १०. कर्मचारी ११. जवाब (प्रश्न) १२. स्वयं प्रभु के सम्मुख १३.
शीशा (राँगा) १४. व्यापार १५. नाता १६. चमत्कार दिखाया
खजाना भर कर १८. स्वामी १९. आप (महान)।

[६७]

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोरमुगट मेरो पति सोई॥
छाँडि दई कुटम की कानि कहा करिहै कोई।
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई॥
अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई॥
भगति देखि राजी हुई जगति देख रोई।
दासी मीराँ लाल गिरधर तारो अब मोही॥

[६८]

मैं गिरधर रँग-राती।
पचरँग[1] चोल पहर सखी मैं झिरमिट[2] खेलन जाती।
ओहि झिरमिट माँ[3] मिल्यो साँवरो खोल मिली तन गाती॥
जिनका पिय परदेस बसत है लिखलिख भेजैं पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है ना कहूँ आती जाती॥
चंदा जायगा सूरज जायगा जायगी धरण अकासी।
पवन पाणी दोनूँ ही जायँगे अटल रहै अविनासी॥
सुरत निरत का दिवला[4] सँजोले[5] मनसा[6] की करले बाती।
प्रेम हटी[7] का तेल मँगाले जग[8] रह्या दिन ते राती[10]॥
सतगुरु मिलिया साँसा[11] भाग्या सैन[12] बताई साँची।
ना घर तेरा ना घर मेरा गावै मीराँ दासी॥

[६९]

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो मोल ।
कोई कहै छाने[1] कोई कहै चौड़े[2] लियो री बजंता ढोल ॥
कोई कहै मुँहघो[3] कोई सुहँघो[4] लियो री तराजू तोल ।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो लियो री अमोलिक मोल ॥
या ही कूँ सब लोग जाणत है लियो री आँखी खोल ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ पूरब जनम कौ कोल[5] ॥

[७०]

श्री गिरधर आगे नाचूँगी
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमीजन को जाचूँगी[1] ।
प्रेम प्रीति की बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी[2] ॥
लोक लाज कुल मरजादा या में एक न राखूँगी ।
पिव के पलँगा पौढ़ूँगी मीराँ हरि रँग राचूँगी[3] ॥

[७१]

पग घूँघरू बाँध मीराँ नाची, रे ।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि[1] हो गई दासी, रे ।
लोग कहैं मीराँ भई बावरी, न्यात कहैं कुल नासी, रे ॥
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी, रे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सहज[2] मिले अविनासी, रे ॥

---

६९ पद—१. छिपाकर २. प्रकट रूप में ३. महँगा ४. सस्ता ५. कौल प्रतिज्ञा (वचन) ।

७० पद—१. परखूँगी २ पहनूँगी ३. रंग जाऊँगी ।

७१ पद—१. अपने आप, स्वयं ही २. सुगमता से ।

[७२]

मैं तो साँवरे के रँग राची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू लोक लाज तजि नाची॥
गई कुमति लई साधु की संगति भगत रूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुन निस दिन काल ब्याल[1] सों बाँची॥
उण बिनि[2] सब जग खारो लागत और बात सब काची[3]।
मीरां श्री गिरधरन लालसूँ भगति रसीली जांची[4]।

[७३]

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूँ रे पाती।
स्याम सनेसो[1] कबहूँ न दीन्हौ जानि बूझ[2] गुझबाती[3]।
डगर[4] बुहारूँ पंथ निहारूँ[5] जोइ जोइ अँखियाँ राती॥
राति दिवस मोहि कल[6] न पड़त है हीयो फटत मेरी छाती।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम का साथी॥

[७४]

परम सनेही राम की निति ओलूँ[1] रे आवै।
राम हमारे हम हैं राम के हरि बिन कछू न सुहावै॥
आवण कह गये अजहूँ न आये जिवड़ो अति उकलावै[2]।
तुम दरसन की आस रमैया कब हरि दरस दिखावै॥
चरण कँवल की लगनि लगी निन, बिन दरसण दुख पावै।
मीरा कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ आणँद बरण्यूँ न जावै॥

[७५]

रमइया विनि रह्योइ[1] न जाइ ।
खान पान मोहि फीको सो लागै नैणा रहे मुरझाइ ॥
वार वार मैं अरज करत हूँ रैण गई दिन जाइ ।
मीराँ कहै हरि तुम मिलियाँ विनि तरस तरस तन जाइ ॥

[७६]

राम मिलण रो घणो उमावो[1] नित उठ जोऊँ वाटड़ियाँ[2]।
दरस विना मोहि कछु न सुहावै जक[3] न पड़त है आँखड़ियाँ ॥
तलफत तलफत वहु दिन वीता पड़ी विरह की पासड़ियाँ[4]।
अव तो वेगि दया करि साहिव मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ ॥
नैण दुखी दरसण कूँ तरसैं नाभि न वैठे साँसड़ियाँ[5]।
राति दिवस यह आरति मेरे कव हरि राखै पासड़ियाँ[6]॥
लगी लगनि छूटण की नाहीं अव क्यूँ कीजे आँटड़ियाँ[7]।
मीराँ के प्रभु कव र मिलोगे पूरो मन की आसड़ियाँ[8] ॥

---

७५ पद—१. रहा ही नहीं जाता ।
७६ पद—१. उमंग २. मार्ग ३. शान्ति (कल) ४. फंदे ५. साँस वेग कम नहीं होता है ६. पास, निकट ७. आँट (टेढ़ाई) ८. आशाएँ ।

[७७]

राम मिलण के काज सखी मेरे आरति उर[1] में जागी री[2]।
तलफत तलफत कल न परत है बिरह बाण उर लागी री।
निस दिन पंथ निहारूँ पीव को पलक न पल भरि लागी री॥
पीव पीव मैं रटूँ राति दिन दूजी[3] सुधि बुधि भागी री।
बिरह भवंग मेरो डस्यो है कलेजो लहरि हलाहल जागी री॥
मेरी आरति मेट गुसांई आइ मिलौ मोहि सागी[4] री।
मीराँ व्याकुल अति उकलाणी पिया की उमंग अति लागी री॥

[७८]

माई म्हारी हरि हू न बूझी बात।
पंड[1] माँसूँ प्राण पापी निकसि क्यूँ नहीं जात॥
पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या साँझ भई परभात।
अबोलणाँ[2] जुग बीतण लागो तो काहे की कुसलात[3]॥
सावण आवण कह गया रे हरि आवण की पास।

[७९]

प्रभू बिनि ना सरै[1] माई।
मेरा प्राण निकस्या जात हरी बिन ना सरै माई॥
कमठ दादुर बसत जल में जल से उपजाई[2]।
तनक जल से बाहर कीना तुरंत मर जाई॥
काठ लकरी बन परी काठ घुन खाई।
ले अगन[3] प्रभु डार आये भसम हो जाई॥
बन बन ढूँढ़त मैं फिरी आली सुधि नहिं पाई।
एक बेर दरसण दीजै सब कसर[4] मिटि जाई॥
पात ज्यों पीरी परी अरु बिपत तन छाई।
दास मीराँ लाल गिरधर मिल्या सुख छाई॥

[८०]

मैं बिरहणि बैठी जागूँ जगत सब सोवै री आली।
बिरहणि बैठी रंग महल में मोतियन की लड़ पोवै[1]।
इक बिरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै॥
तार गिण गिण रैण बिहानी[2] सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि के बिछुड न जावै॥

---

७९ पद—१. काम चलना २. पैदा होना ३. प्रेम की अग्नि ४. कमी।
८० पद—१. पोहती है, गुहती है. २. बीती।

[८१]

पिया मोहि दरसण दीजै हो ।
बेर बेर[1] मैं टेरहूँ अहे क्रिपा कीजै हो ॥
जेठ महीने जल बिना पंछी दुख होई हो ।
मोर असाढ़ाँ कुरलहे[2] घन चात्रग[3] सोई[4] हो ॥
सावण में झड़ लागियौ सखि तीजाँ[5] खेलै हो ।
भादरवै नदियाँ वहैं दूरी जिन[6] मेलै हो ॥
सीप स्वाति ही झेलती[7] आसोजाँ[8] सोई हो ।
देव काती[9] में पूजहे मेरे तुम होई हो ॥
मगसर[10] ठंड बहोती पड़ै मोहि वेग सम्हालो हो ।
पोस महीं पाला[11] घणा[12] अबही तुम न्हालो[13] हो ॥
महा[14] महीं बसंत पंचमी फागाँ[15] सब गावै हो ।
फागुण फागाँ खेलहैं वणराइ जरावै[16] हो ॥
चैत चित्त में ऊपजी[17] दरसण तुम दीजै हो ।
वैसाख वणराइ फूलवै कोइल कुरलीजै[18] हो ॥
काग उड़ावत[19] दिन गया बूझूँ[20] पिंडत[21] जोसी[22] हो ।
मीराँ विरहणी व्याकुली दरसण कब होसी हो ॥

---

८१ पद—इसमें बारामासा वर्णित है। १ बार बार २ करुण स्वर में कूजना ३ चातक, पपीहा ४ वही करता है ५ स्त्री जाति का एक लोक-पर्व (राजस्थान में सावन की तीज धूमधाम से मनाई जाती है) ६ मत ७ धारण करना ८ आश्विन मास ९ कार्तिक (में देवोत्थान एकादशी का त्यौहार पड़ता है) १० मार्गशीर्ष ११ पाला (हिम) पड़ता है १२ बहुत १३ निहारो, आकर देखो १४ माघ मास १५ फाग (होरी) के गीत (धमार आदि) १६ वनश्री विरह अग्नि प्रज्वलित करती है १७ उत्पन्न हुई (इच्छा) १८ कूकना १९ कौआ उड़ाकर विरहिणी स्त्री अपने प्रिय के आने का शकुन देखती है २० पूछना २१ पण्डित २२ ज्योतिषी ।

[८२]

नंद नँदन विलमाई[1], वदरा ने घेरी माई ।
इत घन लरजे[2] उत घन गरजे, चमकत विज्जु सवाई[3] ।
उमड़ घुमड़ चहूँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई[4] ॥
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सवद सुणाई ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित लाई ॥

[८३]

जोगीया जी, दरसण दीज्यो आइ ।
तेरे कारण सब जग ढूँढ्या घर-घर अलख जगाइ[1] ।
खान पान सब फीका लागै नैणाँ नीर न माइ[2] ॥
वहुत दिनाँ के विछुरे प्यारे तुम देख्याँ सुख पाइ ।
मीराँ दासी तुम चरणाँ की मिलज्यो कंठ लगाइ ॥
(अ. प्र.)

[८४]

पीया विन रह्योइ न जाइ ।
तन मन मेरो पिया पर वारूँ वार वार वल जाइ ॥
निस दिन जोऊँ वाट पिया की कव रे मिलोगे आइ ।
मीराँ के प्रभु आस तुमारी लीज्यो कंठ लगाइ ॥

---

८२ पद—१. लुभाकर भुला लिया २. झुकना ३. सवागुनी (अर्थात् अधिक) ४. पुरवा (पूर्व से आनेवाली वर्षा काल की हवा ।

८३ पद—१. पुकार पुकारकर परमात्मा को खोजना २. समा जाना ।

[८५]

पपइया रे पिव की वाणि न बोल।
सुणि पावेली[1] विरहणी रे थारी[2] रालेली[3] पाँख मरोड़ ॥
चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपरि कालर[4] लूण[5]।
पिव मेरा मैं पीव की रे तू पिव कहै स कूण[6] ॥
थारा[7] सवद सुहावणा रे जों पिव मेला[8] आज।
चाँच मढाऊँ थारी सोननी[9] रे तू मेरे सिरताज ॥
प्रीतम कू पतियाँ लिखूँ कउआ तू ले जाइ।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे थाँरी विरहणि धान[10] न खाइ ॥
मीराँ दासी व्याकुली रे पिव पिव करत बिहाइ[11]।
वेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्यौहि न जाइ ॥

[८६]

रे पपइया प्यारे कबको बैर चितार्‌यो[1]।
मैं सूती थी[2] अपने भवन में, पिय पिय करत पुकार्‌यो।
दाध्याँ ऊपर लूण लगायो[3], हियड़े[4] करवत सार्‌यो[5]।
उड़ि बैठो वा बृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सार्‌यो[6]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित धार्‌यो ॥

---

८५ पद—१. पायेगी २. तेरी ३. डालेगी ४. काला ५. लवण, नमक ६. कौन ७. तेरा ८. मिलन ९. सोने की १०. अन्न ११.समय व्यतीत करती है।

८६ पद—१. स्मरण किया २. सो रही थी ३. दग्ध (जले) हुए पर नमक लगाया ४. हृदय ५. आरा (करवत) चलाया ६. फाड़ डाला।

[८७]

हेरी मैं तो दरद दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोइ ।
घाइल की गति घाइल जाणै की जिण[1] लाई[2] होइ ।
जौहरि की गति जौहरी जाणै की जिन जौहर[3] होइ ॥
सूली ऊपरि सेझ हमारी सोवणा[4] किस विध होइ ।
गगन मँडल पै सेझ पिया की किस विध मिलणा होइ ॥
दरद की मारी बन बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोइ ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी जद[5] बैद साँवलिया होइ ॥

[८८]

आवो मन मोहना जी मीठा थाराँ[1] बोल[2] ।
बालपनाँ की प्रीति रमइयाजी कदे[3] नहिं आयो थाँरो तोल[4] ॥
दरसण बिन मोहिं जक[5] न परत है चित मेरो डावाँडोल ।
मीराँ कहै मैं भई रावरी कहो तो बजाऊँ ढोल[6] ॥

[८९]

सखी मेरी नींद नसानी[1] हो ।
पिय को पंथ निहारत सिगरी[2] रैण बिहानी[3] हो ॥
सब सखियन मिलि सीख[4] दई मन एक न मानी हो ।
बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो ॥
अंगि अंगि[5] व्याकुल भई मुख पिय पिय बानी[6] हो ।
अन्तर वेदन बिरह की वह पीड़ न जानी हो ॥
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै मछरी जिमि पानी हो ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी सुध-बुध बिसरानी हो ॥

---

८७ पद—१. जिसने २. पीड़ा लगाई हो ३. गुण ४. शयन, सोना ५. जब
८८ पद—१. आपके २. बोली, वाणी ३. कभी ४. भेद जाना ।
५. कल, शान्ति ६. घोषित कर दूँ ।

[९०]

सइयाँ, तुम विन नींद न आवै हो।
पलक पलक मोहि जुग से बीतैं छिनि छिनि विरह जरावै हो॥
प्रीतम विनि तिम जाइ न सजनी दीपग भवन न भावै[1] हो।
फूलन सेज सूल होइ लागी जागत रैणि विहावै[2] हो॥
कासू[3] कहूँ कुण मानै मेरी कह्याँ न को पतियावै[4] हो।
प्रीतम पनंग[5] डस्यो कर मेरो लहरि लहरि[6] जिव[7] जावै हो॥
दादर मोर पपइया बोलै कोइल सवद सुणावै हो।
उमगि घटा घन ऊलरि[8] आई बीजू चमक डरावै हो॥
है कोइ जग मैं रामसनेही ऐ उरि साल[9] मिटावै हो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी नैणाँ देख्याँ भावै हो।
(अ. प्र.)

[९१]

बिरहिनि बावरी[1] री भयी[2]।
सूने भवन पर ठाढ़ी होइ कै टेरत आह दयी[3]।
दिन नहिं भूख रैनि नहिं निंदरा भोजन भावन गयी।
लेकर अचरो[4] असुव पूँछै ऊघरि[5] गात गयी।
मीराँ कहै मनमोहन प्यारे जाताँ[6] कछु न कही॥
(अ. प्र.)

---

८९ पद—१. नष्ट हो गई २. सारी, सब, ३. व्यतीत हुई, (बीत गई ४. उपदेश ५. अंग अंग ६. शब्द, बोल ७. संज्ञा, चेतना,

९० पद—१. सुहाता है २. बीतती है ३. किससे ४. कहने पर कोई विश्वास नहीं करता है ५. सर्प ६. पीडा का वेग जो कुछ अनंतर पर रह रह कर उत्पन्न होता है। ७. प्राण ८. झुक पड़ी ९. हृदय की पीड़ा।

९१ पद—१. पागल २. हो गई ३. ईश्वर ४. आँचल ५. उघड़ जाता (वस्त्र हीन हो जाता है) ६. चलते समय।

[९२]

दरस बिन दूखण[1] लागे नैण।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहु न पायो चैन।।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी बह गई[2] करवत अैन[3]।।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी[4] रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे दुख मेटण[5] सुख दैण[6]।।

[९३)

को बिरहिनि को दुख जाँणै हो।
जा घट बिरहा सोई लखिहै[1] कै कोइ हरिजन[2] माँनै हो।।
रोगी आरत[3] वैद वसत है वैद ही ओखद[4] जाँणै हो।
बिरह करद[5] उरि अंतरि माँहीं हरि बिनि सब सुख काँनै[6] हो।।
दुगधा आरण फिरै दुखारी सुरत बसी सुत माँनै हो[7]।
चात्रग स्वाति बूँद मन माँहीं पीव पीव उकलाँणै[8] हो।।
सब जग कूड़ो कंटक दुनिया दरद[9] न कोइ पिछाँणै हो।
मीराँ के पति आप रमइया दूजो नहिं कोइ छाँनै[10] हो।।
(अ. प्र.)

---

९२ पद—१ पीड़ा करते हैं २ चल गया ३ पूर्णरूप से ४ छः मास की (अर्थात् लम्बी) ५ दुःख दूर करने ६ सुख देने।

९३ पद—१ अनुभव करेगा २ हरि का भक्त ३ पीड़ा की पुकार ४ औषध ५ छुरा ६ किसको ७ दुधार गाय अरण्य (वन) में फिरती है फिर भी उसे अपने बछड़े की स्मृति बनी रहती है। ८ व्याकुल ९ दर्द, पीड़ा १० गुप्त।

[९४]

साँइयाँ, सुणज्यौ अरज हमारी ।
मया[1] करौ, महल्याँ पग धारो, मैं खानाजाद[2] तुम्हारी ॥
तुम बिन प्राण दुखी, दुखमोचन, सुधि बुधि सबै बिसारी ।
तलफ तलफ उठि उठि मन जोऊँ भयी व्याकुलता भारी ॥
सेज सिंघ ज्यूँ लगी प्राण कूँ[3], निस भुजंग भइ भारी[4] ।
दीपग मनहुँ दुहूँ दिसि लागी[5], विरहिनि जरत बिचारी ॥
जब के गये अजहुँ नहिं आये, बिलँबे[6] कहाँ मुरारी ।
मीराँ के प्रभु, दरसण दीज्यौ, तुम साहिब हम नारी ॥
(अ. प्र.)

[९५]

माई, मेरो पीया बिन अलूँणो[1] देस ।
राग रंग सिणगार न भावै खुलि रहे सिर के केस ।
सावण आयो साहिब दूरे जाइ रहे परदेस ॥
सेझ अलूणी भवन अकेली रैण भयंकर भेस ।
आव सलूणे[2] प्रीतम प्यारे बीते जोवन बेस ॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी तन मन करूँ सब पेस[3] ॥
(अ. प्र.)

---

९४ पद—१ दया २ दासी ३ शय्या सिंह के समान प्राणों को कष्ट प्रद है ४ रात्रि सर्प सी है ५ मानो आग लगी है ६ ठहरे हैं ।

९५ पद—१ फीका, सौन्दर्य रहित २ लावण्य युक्त ३ सेवा में प्रस्तुत (भेंट, अर्पण) करती हूँ ।

[६६]

पिय विनि सूनों छै जी म्हाँरो देस ।
ऐसा है कोई पिव कूं मिलावै तन मन करूँ सब पेस ।
तेरे कारण वन वन डोलूँ कर जोगण को भेस ॥
अवधि वदी ती अजूँ[१] न आये पंडर[२] होइ गया केस ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे तजि दियो नगर नरेस[३] ॥

[६७]

तुम आवो जी प्रीतम मेरे, नित विरहिणि मारग हेरे ।
दुख मेटण सुख दाइक तुम हो किरपा करि ल्यौ नेरे[१] ।
बहुत दिनाँ को जोऊँ[२] मारग अब क्यूँ करो रे अँवेरे[३] ॥
आरत[४] अधिक कहूँ किस आगै आज्यौ मित[५] सवेरे ।
मीराँ दासी तुम चरनन की हम तेरे तुम मेरे ॥
(अ. प्र)

[६८]

आइ मिलौ मोहि प्रीतम प्यारे, हमकूं छाँडि भये क्यूँ न्यारे[१]।
बहुत दिनन की बाट निहारूँ, तेरे ऊपरि तन वारूँ ॥
तुम दरसण की मो मन माँही, आइ मिलौ करि कृपा गुसाँई ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आइ दरस द्यौ सुख के सागर॥
(अ. प्र.)

---

६६ पद—१ अभी तक २ पांडु, श्वेत ३ राजा का नगर (पाट नगर) अर्थात् राणा का देश ।

६७ पद—१ निकट २ जोहती हूँ ३ अवेर, देर ४ आर्त्ति, ५ वेदना मित्र (परमात्मा) ।

६८ पद—१ अलग ।

[९९]

म्हाँरे डेरे आज्यो[1] जी महाराज।
चुणि चुणि[2] कलियाँ सेज बिछायी नखसिख पहर्‌यौ साज॥
जनम जनम की दासी तेरी तुम मेरे सिरताज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी दरसण दीज्यौ आज॥
(अ. प्र.)

[१००]

साजन, म्हाँरी सेझड़ली कब आवै हो।
हँसि हँसि बात करूँ हिड़दा की तब जिवड़ो[1] जक पावै हो॥
पाचूँ इंद्री वसि नहि मोरी घन ज्यूँ धीर धरावै हो।
कठिन विरह की पीड़ गुसाँई मिलि करि तपत बुझावैं हो॥
या अरदास[2] सुणो हरि मेरी विरहिणी पलो[3] बिछावै हो।
तलफ तलफ नित करताँ पिय पिय अमी रस[4] अंग न समावै हो॥
मीराँ लगनि लगी तुझ चरणाँ जग सूँ होई निरदावै हो।
ऐसी वोखद कर[5] हरि हम सूँ विरहिणि विथा गुमावै[6] हो॥
(अ. प्र.)

---

९९ पद—१ आना आइयेगा २ चुन चुनकर ३ आभूषण आदि का शृङ्गार।

१०० पद—१ आत्मा २ प्रार्थना ३ आँचल पसार कर ४ अमृत ५ इस प्रकार की औषध दो ६ कष्ट (पीड़ा) दूर हो।

[१०१]

कोई कहियो रे प्रभु आवन की ।
आप न आवै लिख नहिं भेजे वाँण[1] पड़ी ललचावन की ।
ए दोउ नैण कह्यो नहि मानै नदियाँ बहै जैसे सावन की ॥
कहा करूँ कछु नहि वस मेरो पाँख नहीं उड़ जावन[2] की ।
मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे चेरी भइहूँ तेरे दावन[3] की ॥

[१०२]

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज ।
म्हैलाँ चढि चढि जोऊँ म्हाँरी सजनी कब आवै महाराज ॥
दादर मोर पपइया बोलै कोइल मधुरे साज ।
उमँग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै दामणि छोड़ी लाज ॥
धरती रूप नवा नवा धरिया[1] इन्द्र मिलण कै काज[2] ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी वेग मिलो महराज ॥

[१०३]

घर आवो प्रीतम प्यारा ।
तन मन धन सब भेंट करूँगी भजन करूँगी तुम्हारा ।
तुम गुणवँता साहिब कहिये मो में औगण सारा ॥
मैं निगुणी[1] गुण जाण्यो नाँही तुम छो[2] बगसणहारा[3]।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे तुम बिनि नैन दुख्यारा ॥
(अ. प्र.)

---

१०१ पद—१. स्वभाव २. उड़ जाने के लिए ३. दामन, छोर।
१०२ पद—१. धारण किया २. कारण, हेतु ।
१०३ पद—१. गुणरहित २. हो ३. बख्शने वाले, क्षमा करने वाले ।

[१०४]

म्हारा ओलगिया[1] घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया हिल-मिल मंगल गाया जी॥
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया यूँ मेरे आणँद आया जी।
मगन भई मिली प्रभु अपणासूँ भौ[2] का दरध[3] मिटाया जी॥
चंद कूँ देखि कमोदणि फूलै हरखि भयी मेरी काया जी।
रगरग सीतल भई मेरी सजनी हरि मेरे महल सिधाया[4] जी॥
सब भगतन का कारज कीन्हा[5] सोई[6] प्रभु मैं पाया जी।
मीराँ विरहणि सीतल होई दुख दुन्द[7] दूरि न्हसाया[8] जी॥

[१०५]

म्हारा ओलगिया, घर आज्यो जी।
सुख दुख खोलि कहूँ अँतर[1] की, वेगा वदन[2] वताज्यो[3] जी॥
च्यारि पहर च्यारूँ जुग बीत्या, नैणाँ नींद न आवै जी।
पूरण ब्रह्म अखँड अविनासी, तुम विन विरह सँतावै जी॥
नैणाँ नीर आभ[5] ज्यूँ भरणा ज्यूँ, र मेघ झड़ लाया जी।
रतवंती[6] इत[7] रामकंत विन[8] फिरत वदन विलखाया[9] जी॥
साधू सजन मिलै सिर साटै[10] तन मन करूँ वधाई जी।
जन मीराँ नैं मिलो कृपा करि जनमि जनमि मितराई[11] जी॥

(अ. प्र.)

---

१०४ पद—१. प्रवासी, परदेशी २. भवसागर, संसार ३. दर्द, पीड़ा, ४. पधारे (आये) ५. किया ६. वही ७. द्वन्द्व (कष्ट, झगड़े आदि) ८. दूर हो गये।

१०५ पद—१. आत्मा की २. मुख ३. दर्शन देना ४. युग के समान लम्बे ५. आकाश ६. प्रेम की इच्छुक ७. यहाँ ८. विना ९. उदास होकर १०. वदले में ११. मित्रता, पहिचान।

[१०६]

सहेलियाँ साजन घरि आया हो।
बहोत दिनाँ की जोवती बिरहणि पिव पाया हो ॥
रतन रहूँ नेवछावरी ले आरति[1] साजूँ हो।
पिया का दिया सनेसड़ा ताहि बहोत निवाजूँ[2] हो ॥
पाँच सखी[3] इकठीं भई मिली मंगल गावै हो।
पिय का रली बधावणाँ[4] आणँद अँगि न मावै हो ॥
हरि सागर सूँ नेहरो[5] नैणाँ बँध्या सनेह हो।
मीराँ सखी के आँगणै दूधाँ बूठ्या मेह[6] हो ॥

[१०७]

जोसीड़ा ने लाख बधाई रे अब घर आये स्याम।
आजि आनंद उमँगि भयो है जीव लहै सुखधाम।
पाँच सखी मिलि पीव परसि कैं आनँद ठामूँ[2] ठाम[3] ॥
बिसरि गई दुख निरखि पिया कूँ सुफल मनोरथ काम।
मीराँ के सुख सागर स्वामी भवन गवन कियो राम ॥

[१०८]

बदला रे तू जल भरि ले आय।
छोटी छोटी बूँदन बरसन लागी कोयल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया अँबर बदराँ छायो ॥
सेझ सवाँरी पिय घर आये हिल मिल मंगल गायो।
मीराँ से प्रभु हरि अबिनासी भाग भलो जिन[1] पायो ॥

---

१०६ पद—१. आरती २. अनुग्रह मानना ३. पाँच इन्द्रियाँ ४. आनन्द सहित बधाई कर के स्वागत करना ५. स्नेह ६. दूध की धाराओं की वर्षा।

१०७ पद—१. पांच ज्ञानेन्द्रि

१०८ पद—१. जिसने।

हमारे रोचक एवं उपयोगी ग्रंथ

१—तुलसीदास (श्री चन्द्रबली पाँडे) गोस्वामीजी के जीवन, सिद्धान्त, आदर्श और काव्य सौष्ठव की आलोचना। ४॥)

२—भारतेन्दु की विचार धारा (डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय) भारतेन्दु की विचार शैली का विद्वत्ता पूर्ण विवेचन। २)

३—कबीर (श्री महावीर सिंह गहलौत) खोजपूर्ण जीवनी, सिद्धान्तों का मार्मिक विवेचन सटिप्पण साखियाँ और पद। २॥)

४—झाँसी की रानी (श्रीश) वीर रस का उत्कृष्ट खंडकाव्य। १)

५—रस, अलङ्कार और पिंगल (श्री रामबहोरी शुक्ल) २॥)

६—विषादयोग की वंशी—धार्मिक आध्यात्मिक गीत। इसमें आपको शान्ति देने वाले कीर्तन मिलेंगे। ॥)

७—ध्रुवा (श्री राखालदास वन्द्योपाध्याय) ऐतिहासिक उपन्यास, पुरातत्व तथा इतिहास के साथ ही हिन्दू शक्ति के पतनकाल का मार्मिक दृश्य। १॥)

८—कथामुखी (श्रीविन्दु ब्रह्मचारी) भारतीय वैभव, आदर्श और सिद्धान्त सूचक-सात श्रेष्ठ कहानियाँ। १)

९—चँवेली की एक कली (श्रीबालकराम विनायक) भारत की प्राचीन संस्कृति को सजग करने वाली सात कहानियाँ। १)

१०-चेयरमैन का चुनाव—लब्ध प्रतिष्ठ कहानीकार श्रीचिन्तामणि विनायक जोशी की हास्यरस की कहानियाँ। ॥)

११-विकट प्रश्न—मराठी की हास्य रस का श्रेष्ठ सचित्र कहानियाँ ॥)

१२-भारतीय व्यायाम (श्रीरमेशदत्त शुक्ल) शिक्षा प्रणाली के अनुसार नार्मल स्कूलों के लिए। १)

१३-स्वास्थ्य और खेल(श्री चक्रधर नैथाणी-श्री मुन्नी चौवे) १॥)

१४-चतुर्युग—(चार सांस्कृतिक एकाँकी नाटक, १)